वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 272

भगवान पार्श्वनाथ दशावतार

नाटक

–लेखक–

पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर महाराज

परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के
आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती वर्ष (अप्रैल 2006-अप्रैल 2007)
के अन्तर्गत प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
फोन नं.- (01233) 280184, 280236

प्रथम संस्करण	चैत्र कृ. चतुर्थी, वीर नि. सं. 2533	मूल्य
1100 प्रतियाँ	8 मार्च 2007	20/-रु.

भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानकल्याणक तिथि

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

–: निर्देशन :–

धर्मदिवाकर पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज

–: सम्पादक :–

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन

जैनधर्म के तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ ने आज से 2883 वर्ष पूर्व वाराणसी नगरी में जन्म लेकर सम्मेदशिखर से मोक्षपद प्राप्त किया। उन तीर्थंकर भगवान के जीवन पर सूक्ष्मता से दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि उन्होंने एक दो नहीं अपितु दस भवों तक लगातार क्षमा का परिपालन करते हुए न सिर्फ अपनी आत्मा को समुन्नत बनाया अपितु अपने वैरी को भी कल्याण का मार्ग दिखा दिया। आज के विषम समय में हमें उनके जीवन से प्रेरणा लेकर अपने जीवन में भी कैसे क्षमा, सहनशीलता को स्थान देना है इस बात को बताने के लिए उनके जीवन से संबंधित छोटी-छोटी पुस्तकें वर्तमान पीढ़ी के लिए ज्ञान प्राप्ति का सुलभ माध्यम बन सकती हैं।

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने भगवान पार्श्वनाथ से संबंधित अनेक प्रकार के साहित्य का सृजन किया है और वह सभी साधु-साध्वियों को भी निरन्तर यही प्रेरणा देती रहती हैं कि आप सभी चौबीसों तीर्थंकरों के पंचकल्याणक तीर्थों एवं उनके जीवनवृत्त का जिस किसी भी माध्यम से बन सके, खूब प्रचार-प्रसार करें।

प्रेरणा प्राप्ति की उसी शृँखला में पूज्य माताजी के ही संघस्थ शिष्य पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज ने भगवान पार्श्वनाथ के दश भव के नाटकों को लेखनीबद्ध करके जनमानस को प्रदान किया है जिससे आबाल-गोपाल, युवा-वृद्ध आदि जो भी नाटक देखने या करने वाले हैं उन सभी को इससे कुछ न कुछ शिक्षा अवश्य मिलेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। जन-जन के आराध्य सातिशय सांवरिया बाबा की भक्ति करते हुए आप सभी इस पुस्तक के माध्यम से अपने जीवन को समुन्नत बनावें, यही मेरी मंगल कामना है।

G G G G G

COURTESY - JAIN BOOK DEPOT

C/o Shri Nabhi Kumar Manav Kumar Jain

C-4, Opp. PVR Plaza, Cannaught Place, New Delhi-1

Ph.-011-23416101-02-03/Website : www.jainbookdepot.com

प्रस्तावना

-ब्र. कु. बीना जैन (संघस्थ)

'क्षमा' शब्द यूँ तो दो अक्षरों से सिमटा हुआ बहुत छोटा सा शब्द है। परन्तु वास्तव में देखा जाये तो इस छोटे से शब्द में बड़ा सार भरा हुआ है। जब हम इस शब्द की गहराई में जाते हैं, उसका चिन्तन और मनन करते हैं तो हमें तत्क्षण ही क्षमा के अवतार वर्तमान चौबीसी के तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का ध्यान आता है जिन्होंने लगातार दस भवों तक अपने भाई कमठ के द्वारा घोर उपसर्ग किये जाने पर भी उसका प्रतिकार न कर समता भाव से उन्हें सहते हुए क्षमा धारण किया और प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच भी आत्मकल्याण करते हुए अन्ततः दशवें भव में तीर्थंकर पार्श्वनाथ बन गये।

बंधुओं! क्षमा मांगना तो सरल है किन्तु अन्तःकरण से किसी को क्षमा कर देना बहुत ही कठिन है। कषाय के वशीभूत हुआ प्राणी न जाने कितनी बार सम्बोधन प्राप्त होने पर भी अपने वैरी को कुछ क्षण के लिए क्षमा तो कर देता है परन्तु कुछ समय बाद निमित्त पाकर पुनः मन में विकार भाव, क्रोध कषाय आ जाती है और कभी-कभी तो यह वैर जन्म-जन्मांतरों तक भी चलता जाता है। लेकिन आचार्यों का कथन है कि जिस प्रकार से खून से सना वस्त्र खून से साफ नहीं किया जा सकता ठीक उसी प्रकार क्रोध को क्रोध से नहीं जीता जा सकता उसके लिए हमें स्वच्छ जल के समान क्षमा को ही अपनाना पड़ेगा।

भगवान पार्श्वनाथ ने मरुभूति की पर्याय से लेकर भगवान पार्श्वनाथ बनते तक कमठ द्वारा किये गये अकारणिक उपसर्गों को सहन कर सदैव क्षमा धारण की और उनकी आत्मा ऊर्ध्वगामी होती गई जबकि कमठ ने अपने सगे भाई से अकारणिक वैर बांधकर कष्ट दिया और नरक और पशुगति के नाना दुःखों को सहन करता रहा लेकिन उसे भी अंततः संवर देव की पर्याय में क्षमा को ही अपनाना पड़ा और मिथ्यात्व का त्याग कर सम्यग्दर्शन को धारण करना पड़ा तभी जाकर उसका भी कल्याण हुआ। वस्तुतः आज के युग में भगवान पार्श्वनाथ की क्षमा, त्याग, सहनशीलता व सहिष्णुता गुण को अपनाने की महती आवश्यकता है। यूँ तो भगवान पार्श्वनाथ के विषय में पार्श्वपुराण, पार्श्वनाथ चरित, पार्श्वाभ्युदय, उत्तरपुराण आदि अनेक ग्रंथ मिलते हैं जिनसे हमें भगवान पार्श्वनाथ के जीवन को जानने का सुयोग मिलता है किन्तु उनके दशों भवों को नाटक के रूप में निबद्ध कर कोई साहित्य प्रकाशित हुआ हो, ऐसा कभी देखने में नहीं आया। चूँकि पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

का सदैव यही प्रयास रहता है कि कथा, भजन, काव्य, प्रश्नोत्तरी, नाटक आदि के माध्यम से हम अपने चौबीसों तीर्थंकरों के जीवन दर्शन व उनके कल्याणकारी उपदेशों को जनमानस तक पहुँचाकर देश व राष्ट्र को अहिंसक व समुन्नत बनाने में सहभागी बनें व अपनी आत्मा का भी कल्याण करें अतः पूज्य महाराज जी ने उनकी प्रेरणा प्राप्त कर भगवान पार्श्वनाथ के दशों भवों को नाटक के रूप में लेखनीबद्ध किया है। इस नाटक की सम्पूर्ण विषय सामग्री पूज्य गणिनी माताजी द्वारा लिखित पुस्तक ''भगवान पार्श्वनाथ'' से ली गई है।

वर्तमान में भारत के दिगम्बर जैन तीर्थों में बहुतायत संख्या में भगवान पार्श्वनाथ से संबंधित मूर्तियाँ एवं अतिशय क्षेत्र हैं तथा संकट की स्थिति में प्रायः जैन धर्मावलम्बी भगवान पार्श्वनाथ का सुमिरन, मंत्र-जाप्य आदि करते देखे जाते हैं। 6 जनवरी सन् 2005 में पूज्य माताजी ने भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का शुभारंभ जन्मभूमि बनारस से किया था और इस महोत्सव को 3 वर्ष तक विभिन्नरूप में मनाने की योजना बनाई थी। प्रथमतः 2005-2006 तक 1 वर्ष जन्मकल्याणक के रूप में मनाकर उनकी जन्मभूमि बनारस का व्यापक प्रचार-प्रसार किया गया, पुनः 2006-2007 तक का वर्ष निर्वाणभूमि 'सम्मेदशिखर वर्ष' के रूप में पूरे प्रदेश की जैन समाज को मनाने की घोषणा की गई, उसके बाद अब 2007-2008 का पार्श्वनाथ की केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र तीर्थ के नाम से प्रचारित किया जा रहा है। वहाँ दिसम्बर 2007 को तिखाले वाले बाबा का सहस्राब्दि महोत्सव एवं मस्तकाभिषेक सम्पन्न होगा। यह महोत्सव 7 दिसम्बर 2007 से प्रारंभ होकर 4 जनवरी 2008 (पार्श्वनाथ जन्मजयंती) तक चलेगा। अहिच्छत्र तीर्थ पर तृतीय सहस्राब्दि के तीन वर्षीय कार्यक्रम का समापन घोषित किया जायेगा। इस वर्ष के अन्तर्गत आप इन नाटकों के माध्यम से भगवान पार्श्वनाथ का गुणानुवाद करें और इन नाटकों का मंचन करावें, क्योंकि नाटिका देखने या करने वाले एक भी व्यक्ति ने अगर उनके एक भी गुण को अपने जीवन में धारण कर लिया तो उसका तो कल्याण होगा ही, नाटक लेखन और मंचन की भी सार्थकता हो जायेगी।

नाटक कराने वालों के लिए पूज्य माताजी की विशेष प्रेरणा यह है कि पात्रों का चयन करते समय पति-पत्नी के अभिनय हेतु आप वास्तविक पति-पत्नी अथवा केवल लड़कियों को या केवल लड़कों को ही पति-पत्नी के पात्ररूप में प्रस्तुत करें। भगवान पार्श्वनाथ का जीवन चरित सभी के जीवन को समुन्नत बनावे, यही मंगल कामना है।

G G G G G

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव जीवन दर्शन

-पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर

आज से करोड़ों वर्ष पूर्व प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का जन्म भारतवर्ष के उत्तरप्रदेश की अयोध्यानगरी के महाराजा नाभिराय की महारानी मरुदेवी की पवित्र कुक्षि से चैत्र कृष्णा नवमी को हुआ। क्षत्रियवर्णी, काश्यपगोत्रीय, इक्ष्वाकुवंशी, तप्त स्वर्ण सदृश, बैल चिन्ह से युक्त उन तीर्थंकर भगवान के शरीर की अवगाहना दो हजार हाथ एवं आयु चौरासी लाख पूर्व वर्ष की थी। भगवान ऋषभदेव ने कर्मभूमि की आदि में प्रजा को असि, मसि आदि षट्क्रियाओं द्वारा जीवन जीने की कला सिखाई थी। सम्पूर्ण विद्याओं और कलाओं के जनक भगवान ऋषभदेव ने चैत्र कृष्णा नवमी की शुभ तिथि में प्रयाग में वटवृक्ष के नीचे जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर घोर तपश्चरण किया पुनः मुनिपरम्परा को जीवन्त करने हेतु आहारार्थ निकले। 1 वर्ष 39 दिन के पश्चात् उनका प्रथम आहार हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस के यहाँ इक्षुरस का हुआ। प्रयाग के पुरिमतालपुर उद्यान में वटवृक्ष के नीचे फाल्गुन कृष्णा ग्यारस को उन्हें दिव्यकेवलज्ञान की प्राप्ति हुई, उनके समवसरण में श्रीवृषभसेन आदि 84 गणधर, 84 हजार मुनि, गणिनी ब्राह्मी आर्यिका सहित 350000 आर्यिकाएं, 3 लाख श्रावक, 5 लाख श्राविकाएँ थे। उनके जिनशासन यक्ष गोमुख देव एवं यक्षी चक्रेश्वरी देवी हैं। आयु के अंत में उन्होंने माघ कृष्णा चौदस को कैलाशपर्वत से मोक्ष प्राप्त किया।

चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर का जीवन दर्शन

वर्तमान से 2605 वर्ष पूर्व चौबीसवें एवं अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म भारतवर्ष के बिहार प्रांत में कुण्डलपुर (जि.-नालंदा) नगरी में महाराजा सिद्धार्थ व महारानी त्रिशला की पवित्र कुक्षि से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी की पवित्र तिथि में हुआ। क्षत्रियवर्णी, काश्यपगोत्रीय, नाथवंशी, तप्त स्वर्ण सदृश, सिंह चिन्ह से युक्त उन तीर्थंकर भगवान के शरीर की अवगाहना सात हाथ एवं आयु 72 वर्ष की थी। 30 वर्ष की उम्र में अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करने वाले भगवान महावीर ने षण्डवन में सालवृक्ष के नीचे मगशिर कृष्णा दशमी तिथि में दीक्षा ग्रहण की। उनका प्रथम आहार कूल ग्राम के राजा वकुल (अपर नाम कूल) के द्वारा खीर का हुआ तथा विशेष आहार कौशाम्बी में महासती चंदना द्वारा खीर का हुआ। भगवान महावीर को दिव्य केवलज्ञान की प्राप्ति ज्ञातृषण्डवन में वैशाख शुक्ल दशमी को ऋजुकूला नदी के तट पर हुई, उनके समवसरण में श्री इन्द्रभूति आदि 11 गणधर, 14 हजार मुनि, गणिनी आर्यिका चन्दना सहित छत्तीस हजार आर्यिकाएँ, 1 लाख श्रावक व 3 लाख श्राविकाएं थीं। उनकी दिव्यध्वनि श्रावण कृष्णा एकम को खिरी और कार्तिक कृष्णा अमावस्या को आज से 2532 वर्ष पूर्व बिहार प्रान्त स्थित पावापुरी से मोक्ष पद प्राप्त किया।

भगवान महावीर के वीर, वर्द्धमान, महावीर, सन्मति, अतिवीर ये पाँच नाम प्रसिद्ध हैं।

विधान की रचयित्री राष्ट्रगौरव, गणिनीप्रमुख, आर्यिकशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान : टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.
जन्मतिथि : आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा)
वि. सं. 1991 (22 अक्टूबर सन् 1934)
गृहस्थ का नाम : कु. मैना
माता-पिता : श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन
आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत एवं गृहत्याग : ई. सन् 1952 में बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से।
क्षुल्लिका दीक्षा : चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में
आर्यिका दीक्षा : वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्यश्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व : अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं 250 विशिष्ट ग्रंथों की लेखिका। सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा : हस्तिनापुर में जंबूद्वीप तीर्थ का निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव दीक्षा तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास, भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदाबिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा।

महोत्सव प्रेरणा : पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव ।

शैक्षणिक प्रेरणा : 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रिय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा : जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

–पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में राजधानी दिल्ली में हुई थी। संस्थान का मुख्य कार्यालय सन् 1974 में हस्तिनापुर में प्रारंभ हुआ। इस संस्थान के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हस्तिनापुर में तथा अन्यत्र चल रही हैं–

1. सन् 1972 से वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के अन्तर्गत लाखों ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं
2. सन् 1974 से इस संस्थान के मुखपत्र के रूप में 'सम्यग्ज्ञान' हिन्दी मासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन हो रहा है।
3. सन् 1974 से 1985 तक हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य हुआ।
4. सन् 1974 से अब तक जम्बूद्वीप रचना के अतिरिक्त अनेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है– कमल मंदिर, तीन मूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, अष्टापद, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, तेरहद्वीप जिनालय तथा नवग्रहशांति जिनमंदिर।
5. जम्बूद्वीप पुस्तकालय जिसमें लगभग 15000 ग्रंथ संग्रहीत हैं।
6. णमोकार महामंत्र बैंक जिसमें भक्तों द्वारा लिखकर भेजे गये णमोकार मंत्र जमा किये जाते हैं।
7. समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा संगोष्ठियों के आयोजन किये जाते हैं।
8. यात्रियों के शुद्ध भोजन के लिए राजा श्रेयांस भोजनालय का संचालन।
9. यात्रियों के ठहरने के लिए डीलक्स फ्लैट्स वाली कई धर्मशालाओं तथा कोठियों एवं बंगलों का निर्माण किया गया है।
10. जम्बूद्वीप परिक्रमा के लिए नौका विहार, ऐरावत हाथी, मिनी ट्रेन, झूलें आदि हैं।
11. ज्ञानमती कला मंदिरम् में हस्तिनापुर के प्राचीन इतिहास से संबंधित झाँकियाँ हैं।

दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हरिद्वार, झाँसी, तिजारा आदि से जम्बूद्वीप स्थल तक आने के लिए दिनभर बसें मिलती रहती हैं।

दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भव्य नंद्यावर्त महल तीर्थ तथा प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में निर्मित भगवान ऋषभदेव दीक्षा तीर्थ का भी संचालन होता है।

जम्बूद्वीप एवं अन्य तीर्थों के दर्शन हेतु कम से कम एक बार अवश्य पधारें।

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से घोषित सम्मेदशिखर वर्ष (2006-2007) के अन्तर्गत अपने-अपने तीर्थों व मंदिरों में भगवान पार्श्वनाथ के निम्न जीवन दर्शन को शिलालेखों पर उत्कीर्ण करवाकर लगवायें।

तेइसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का जीवन दर्शन

-गणिनी ज्ञानमती

जन्मभूमि	–	**वाराणसी (उत्तर प्रदेश)**
पिता	–	महाराजा अश्वसेन
माता	–	महारानी वामादेवी (ब्राह्मी)
वर्ण	–	क्षत्रिय
वंश	–	उग्रवंश
देहवर्ण	–	मरकतमणि सदृश (हरा)
चिन्ह	–	सर्प
आयु	–	सौ वर्ष
अवगाहना	–	नौ हाथ
गर्भ	–	वैशाख कृ. 2
जन्म	–	पौष कृ. 11
तप	–	पौष कृ. 11
दीक्षा वन एवं वृक्ष	–	अश्ववन एवं देवदारूवृक्ष
प्रथम आहार	–	गुल्मखेट नगर के राजा धन्य द्वारा (खीर)
केवलज्ञान स्थल	–	अहिच्छत्र
केवलज्ञान	–	चैत्र कृ. 4 (14)
मोक्ष	–	श्रावण शु. 7
मोक्षस्थल	–	सम्मेद शिखर पर्वत
समवसरण में गणधर	–	श्री स्वयंभू आदि 10
मुनि	–	सोलह हजार
गणिनी	–	आर्यिका सुलोचना
आर्यिका	–	छत्तीस हजार
श्रावक	–	एक लाख
श्राविका	–	तीन लाख
जिनशासन यक्ष	–	धरणेन्द्र देव
यक्षी	–	पद्मावती देवी

भगवान पार्श्वनाथ वर्तमान वीर नि.सं. 2533 से 2783 वर्ष पहले मोक्ष गए हैं।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खारी बावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी 19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली

पूज्य पीठाधीश क्षुल्लकरत्न

श्री मोतीसागर जी महाराज का परिचय

–ब्र. कु. इन्दु जैन (संघस्थ)

गुरु तथा शिष्य की कृतज्ञता तथा उपकार में सम्राट चन्द्रगुप्त तथा एकलव्य जैसे हमें अनेकों उदाहरण प्राचीन इतिहास में पढ़ने तथा लोगों के द्वारा सुनने को मिल जाते हैं किन्तु वर्तमान के भौतिकवादी युग में आधुनिक परिवेश में पले-बढ़े और स्वार्थरत प्राणी जब रिश्ते-नातों को भी भूलकर अपने अहं की पुष्टि में लगा हुआ है ऐसे समय में विरले ही ऐसे व्यक्ति मिलेंगे जिन्होंने अपने जीवन में कृतज्ञता का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया हो।

ऐसे ही विरले व्यक्तियों में एक, गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के सुयोग्य शिष्य परमपूज्य पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर महाराज का अनुभवी व्यक्तित्व हमारे समक्ष है जिन्होंने प्रारंभ से ही गुरु के प्रति अपना सर्वस्व समर्पित कर अपने कर्तव्य का परिपालन करना अपने जीवन का ध्येय बनाया और उसमें सदा सफल भी रहे हैं। गुरु के द्वारा रात को दिन कहने पर दिन मानने वाले पूज्य पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर महाराज में कृतज्ञता के साथ-साथ सहिष्णुता गुण भी विशेष है और ये गुण बहुधा एक ही व्यक्ति में मिलना दुर्लभ है। अगर यह कहा जाये कि इन्हीं गुणों के कारण हमें विश्व की अद्वितीय और नयनाभिराम कृति जम्बूद्वीप रचना के दर्शन हो रहे हैं तो शायद कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

मध्यप्रदेश की धर्मपरायण नगरी सनावद में श्रेष्ठी श्री अमोलकचंद जी सर्राफ की धर्मपत्नी सौ. रूपाबाई जी से आश्विन कृष्णा चतुर्दशी, सोमवार वि.सं. 1986, 30 दिसम्बर 1940 ई.के दिन एक पुत्ररत्न ने जन्म लिया, जिनका नामकरण बड़े प्यार से उन्होंने 'मोतीचंद' रखा । 4 भाई और 3 बहनों में ज्येष्ठ मोतीचंद माता-पिता से प्राप्त संस्कारों के कारण प्रारंभ से ही धार्मिक प्रवृत्ति के रहे, आपके परिवार का मूल व्यवसाय सर्राफे का है। इतने सम्पन्न परिवार के मध्य रहते हुए भी मोतीचंद जी को सांसारिक वैभव में रंचमात्र भी रुचि नहीं रही फलतः सन् 1958 में 18 वर्ष की लघुवय में ही इन्होंने स्वरुचि से जिनप्रतिमा के सम्मुख आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर लिया। संसार की

अनादि व्यवस्था की भांति प्रत्येक माता-पिता पुत्र के युवा होने पर उसका विवाह कर उसे कुशलतापूर्वक गृहस्थी का संचालन करते देखकर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते हैं, यही स्वप्न इनके माता-पिता का भी था लेकिन जब उन्हें इनके ब्रह्मचर्य व्रत लेने की बात पता लगी तो उन्होंने मोतीचंद को बहुत समझाया किन्तु दृढ़तापूर्वक अपने मुक्तिपथ का चयन करने वाले अपने सुयोग्य पुत्र को जब वे नहीं समझा सके तब पिता ने व्यापार का सम्पूर्ण भार इन पर छोड़ दिया। 9 वर्षों तक व्यापार के कार्यों में रचे-पचे रहने पर भी वे सदैव चक्रवर्ती वज्रनाभि की वैराग्य भावना का चिंतन करते हुए दृढ़ रहे। यूँ तो इन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत ले रखा था परन्तु सुकुमार जीवन होने की वजह से कभी भी इनके मन में साधु संघ में रहने का विचार नहीं आया। व्यापार के साथ-साथ यह सदा सामाजिक व धार्मिक कार्यों में भी अग्रणी रहते थे और समय-समय पर धार्मिक झांकियों व नाटकों के माध्यम से समाज में धार्मिक अभिरुचि को जागृत करते हुए स्वयं भी नाटकों में भाग लेते थे। कभी-कभी व्यक्ति के जीवन में नाटक के पात्र एवं उनका अभिनय अमिट छाप छोड़ते हुए उसकी जीवन दिशा को परिवर्तित कर देता है, यही बात युवा मोतीचंद के साथ हुई, एक बार नाटक में किया गया निकलंक के पात्र का अभिनय उनके जीवन में अमिट छाप छोड़ गया कि संघर्षों में भी अपने पथ से विचलित नहीं होना व्यक्ति को उन्नति के शिखर पर पहुँचा देता है। इसके अतिरिक्त ये शास्त्रसभा एवं पाठशाला का संचालन भी करते थे।

सन् 1967 में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का ससंघ चातुर्मास सनावद में हुआ उस समय आपका संघ से पूर्णतः जुड़ाव हो गया और उस 7 माह में रत्नपारखी माताजी ने इनकी योग्यता को देखकर इन्हें घर से निकालने का प्रयत्न प्रारंभ किया और सर्वप्रथम सनावद में ही इन्हें गोम्मटसार जीवकाण्ड आदि ग्रंथों का अध्ययन कराना प्रारंभ किया। पूज्य माताजी की शिक्षाप्रद नीतियों से प्रभावित होकर सन् 1968 में मोतीचंद जी अध्ययन के उद्देश्य से संघ में आये और तभी से माताजी की विशेष प्रेरणा और आचार्यश्री शिवसागर महाराज का स्नेह प्राप्त कर संघस्थ शिष्य के रूप में रहने लगे। अध्ययन के फलस्वरूप मात्र 3-4 वर्षों के अन्दर ही इन्होंने शास्त्री व न्यायतीर्थ की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लीं, तब से आज तक माताजी के पास रहकर आप चारों अनुयोगों के स्वाध्याय में संलग्न रहते हैं। सन् 1965 में पूज्य माताजी के मस्तिष्क में जब जम्बूद्वीप रचना की योजना आई, तब उसे साकार रूप प्रदान

करने के लिए माताजी के निर्देशानुसार कई स्थानों का निर्णय लिया गया, किन्तु शायद पृथ्वी के गर्भ में उसका भविष्य छिपा होता है अतः जिस भूमि पर इसका योग था रचना का निर्माण वहीं हुआ। सन् 1967 में जम्बूद्वीप रचना के निर्माण के विषय में माताजी के द्वारा यह नियम लेने पर 'इस रचना निर्माण से मेरे संयम में किसी प्रकार की बाधा नहीं आएगी' आपने माताजी को यह वचन दिया कि मैं तन, मन, धन से इस योजना को साकार रूप दूँगा और आपके संयम में किसी प्रकार की बाधा नहीं आने दूँगा' और उस वचन का पूर्णतः पालन करते हुए अथक परिश्रमपूर्वक हस्तिनापुर की पावन धरा पर जम्बूद्वीप रचना को साकाररूप प्रदान करने में प्रमुख भूमिका निभाई। इसके साथ ही पूज्य माताजी के द्वारा समय-समय पर आयोजित प्रत्येक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों में अपना पूर्ण सहयोग भी प्रदान करते रहे और आज दीक्षा के पश्चात् भी कर रहे हैं। इसी क्रम में 4 जून 1982 को भारत की राजधानी दिल्ली के लाल किला मैदान से पूज्य माताजी के आशीर्वाद व तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरागांधी के कर-कमलों से प्रवर्तित जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति रथ के 1045 दिन तक हुए भारत भ्रमण के मध्य आपने लगभग पूरे हिन्दुस्तान में अहिंसा व जैनधर्म के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करते हुए कुशलतापूर्वक ज्ञानज्योति का प्रवर्तन कराया।

मानव जीवन में संगति और वातावरण का बहुत बड़ा महत्व होता है, त्यागमयी वातावरण में गुरु सानिध्य में रहते हुए इन्होंने प्रारंभ से ही स्वरुचि से शोध का भोजन करना प्रारंभ कर दिया और सन् 1981 से 1985 तक नमक और मीठा इन दोनों सुस्वादु रसों का त्याग कर दिया था, जबकि माताजी इनकी सुकुमारता देखकर कभी इन्हें त्याग की प्रेरणा नहीं देती थीं। इनका यह अभ्यास त्यागमार्ग की उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए ही था यही कारण रहा कि 4-5 वर्षों से दीक्षा हेतु आतुर मोतीचंद जी को जम्बूद्वीप रचना निर्माण की पूर्णता के बाद माताजी ने दीक्षा हेतु स्वीकृति प्रदान की।

पुनः फाल्गुन शु. नवमी, 8 मार्च 1987 के शुभ मुहूर्त में आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज ने विशाल जनसमुदाय के बीच हस्तिनापुर में आपको क्षुल्लक दीक्षा प्रदान कर ''मोतीसागर'' नाम से अलंकृत किया। दीक्षा के पश्चात् संस्थान की गतिविधियों के पूर्ववत् निर्देशन व इसके संरक्षण-संवर्धन हेतु माताजी ने 2 अगस्त 1987 श्रावण शुक्ला सप्तमी के शुभ दिन आपको

संस्थान के 'पीठाधीश' पद पर आसीन किया। तब से लेकर आज तक अपनी आगम चर्या का निर्बाधरूप से पालन करते हुए संस्थान की प्रत्येक गतिविधियों में आप कुशल निर्देशन प्राप्त करते हैं। प्रत्येक कार्य को अनुशासनबद्ध तरीके से सफलतापूर्वक सम्पन्न करना ही आपका एकमात्र लक्ष्य रहता है फिर चाहे वह अयोध्या, कुण्डलपुर, हस्तिनापुर, प्रयाग, मांगीतुंगी आदि तीर्थों का विकास कार्य हो, राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय महोत्सव हो, लघु अथवा वृहत् विधानों के आयोजन हों, रथ भ्रमण हों अथवा अन्य कोई भी कार्यक्रम उसमें सदैव आपका कुशल दिशानिर्देश मिलता रहता है। आपके इन्हीं सब कार्यकलापों को देखते हुए पूज्य माताजी ने सन् 1997 में चौबीस कल्पद्रुम विधान के समापन अवसर पर दिल्ली-लाल मंदिर की सभा में आपको ''धर्म दिवाकर क्षुल्लकरत्न'' की उपाधि से विभूषित किया है।

अनेक गुणों से विभूषित, सतत ज्ञानाराधना एवं अपनी चर्या में संलग्न ऐसे गुरुभक्ति का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करने वाले पूज्य क्षुल्लक जी के जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर त्यागपथ पर निरन्तर अग्रसर रहते हुए हम भी अपने जीवन को समुज्जवल बनावें और पूज्य महाराज जी से इसी प्रकार दिशानिर्देश प्राप्त कर उनके अनुभव ज्ञान से सबको लाभान्वित करते रहें, यहीं भगवान जिनेन्द्र से मंगल प्रार्थना है।

G G G G G

मंत्र

भगवान पार्श्वनाथ दशावतार

(भगवान पार्श्वनाथ के पूर्व भवों पर प्रस्तुत क्रमिक नाटक)

मरुभूति

–प्रथम दृश्य–

(मंच पर सामूहिक प्रार्थना)

धरती का तुम्हें नमन है, आकाश का तुम्हें नमन है।
तीन लोक के सौ इन्द्रों ने, किया तुम्हें वंदन है।।
सौ-सौ बार नमन है-2
पार्श्वनाथ प्रभु के चरणों में, सौ-सौ बार नमन है।।टेक.।।
तीन तीर्थ माने हैं जिनके, पंचकल्याण से पावन,
वाराणसि, अहिच्छत्र और सम्मेदशिखर मनभावन।
इनके दर्शन से भक्तों के, पावन होते मन हैं,
सौ-सौ बार नमन है, पार्श्वनाथ प्रभु.....।।1।।

वर्तमान में पार्श्वनाथ का, अतिशय खूब बखाना,
अंतरिक्ष, शिरपुर, चंवलेश्वर, मक्सी, अडिन्दा जाना।
अतिशायी कचनेर में जाकर, करो प्रभू दर्शन है,
सौ-सौ बार नमन है, पार्श्वनाथ प्रभु.....।।2।।

कर्नाटक के बीजापुर में, सहस्रफणा पारस हैं,
जम्बूद्वीप हस्तिनापुर में, चिन्तामणि पारस हैं।
भारत के अनेक नगरों में, पारस प्रभु मंदिर हैं,
सौ-सौ बार नमन है, पार्श्वनाथ प्रभु.....।।3।।
गणिनी ज्ञानमती माता, कहती हैं सब भक्तों को,
पारस प्रभु के अतिशय से, परिचित करवाओ सब को।
सभी ''चन्दनामती'' वर्ष भर, उत्सव करो सफल है,
सौ-सौ बार नमन है, पार्श्वनाथ प्रभु.....।।4।।

राजदरबार का दृश्य

(राज्यसभा में नृत्य)

राजदरबार लगा हुआ है। मध्य में स्वर्ण सिंहासन पर अपने अतुलित वैभव के साथ पोदनपुर के महाराजा अरविन्द विराजमान हैं। मंत्रीगण अपने-अपने स्थान पर विराजमान हैं। तभी अतिशय कुशल प्रौढ़ मंत्री महोदय गंभीर मुद्रा को लिए हुए महाराज के पास आते हैं।)

मंत्री विश्वभूति–प्रणाम महाराज!

महाराज–(मधुर मुस्कान से उनकी ओर देखते हुए यथोचित आसन पर बैठने का इशारा करते हैं) आइए मंत्रिवर! कहिए! राज्य में सर्वत्र कुशल तो है ना?

मंत्री–(बैठते हुए) हाँ महाराज! आपके प्रसाद से सर्वत्र कुशल मंगल है। सचमुच में इस समय पोदनपुर आपके प्रसाद को प्राप्त कर साक्षात् भगवान बाहुबली के राज्यसुख का स्मरण किया करती है। शहर में अनीति तो प्रवेश ही नहीं कर पाती है क्योंकि नीतिदेवी ने उसका इस शहर से बहिष्कार ही कर दिया है। आपकी यश सुरभि दशों दिशाओं में फैल रही है।

(अरविंद महाराज एकटक मंत्री के मुख को देख रहे हैं। मंत्री जी कुछ क्षण सोचते हैं पुनः बोलते हैं)

मंत्री–महाराज! आज मैं आपसे सदा के लिए विदाई लेने आया हूँ।

महाराज–(आश्चर्य चकित होते हुए) ऐं!! मंत्री जी क्या-क्या, आपने क्या कहा? क्या मुझसे कोई नाराजगी का प्रसंग आया है?

मंत्री–नहीं-नहीं महाराज! आप अन्यथा न सोचें। प्रभो! आपके पिता और

पितामह आदि बुजुर्गों ने तथा मेरे माता-पिता, पितामह आदि बुजुर्गों ने जिस आश्रम को अंत में स्वीकार किया है और जो सनातन परम्परा रही है मैं भी उस गृह कारावास को छोड़कर सन्यस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहता हूँ।

महाराज—मगर.....।

मंत्री—महाराज! आप प्रसन्न होइए और मुझे अब शीघ्र ही आज्ञा प्रदान कीजिए।

(महाराज कुछ क्षण को स्तब्ध हो जाते हैं पुनः मंत्री की भार्या अनुंधरी व युगल पुत्रों के बारे में सोचने लगते हैं)

महाराज—(मन में) क्या मंत्रिवर वास्तव में हमारे असीम प्रेम को ठुकरा देंगे? हो सकता है! जब मनुष्य को वैराग्य हो जाता है तब उसे यह सारा विश्व का सौन्दर्य ओसबिंदु के समान चंचल दिखाई देने लगता है। तो क्या ये मंत्री जी उसी वैराग्य को प्राप्त कर चुके हैं?

(मंत्री महाराज को सोच में निमग्न देखकर महाराज के हृदय के मोह को समझ गए और बोले)

मंत्री—(खड़े होकर) महाराज! इस संसार में इस जीव का किसके साथ संबंध नहीं हुआ है। यहाँ किस-किसको मैंने अपना स्वामी नहीं बनाया? अथवा मैं किस-किसका स्वामी नहीं हुआ? कितनी बार मैंने चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण किया होगा? किस-किस योनि में नहीं गया होऊँगा? लेकिन प्रभो! अब तक मुझे शांति नहीं मिली, बस, अब मैं उस अक्षय शांति की खोज में अपने आपको लीन कर लेना चाहता हूँ।"

महाराज—मंत्रिवर! क्या आपने अपने परिवारजनों से आज्ञा ले ली है? क्या आपके पुत्रों ने खुशी-खुशी आपको वन में भटकने की और घर-घर में भिक्षावृत्ति की आज्ञा दे दी है?

मंत्री—हे राजन! जब वे दोनों पुत्र आपकी आज्ञा में हैं तब वे आपके अनुकूल ही चलेंगे पुनः वे आपकी आज्ञा के बाद आज्ञा क्यों नहीं देंगे? दूसरी बात यह है कि पत्नी-पुत्रादि सभी स्वार्थ के सगे हैं, सब परमार्थ से रोकने वाले हैं, पर क्या ये मुझे यमराज के मुख से बचा सकेंगे? यदि नहीं, तो फिर इनके मोह में फंसने का क्या लाभ? ना जाने कितने भवों में मैंने कितने परिवारों को रोते-बिलखते छोड़ा होगा। यह शरीर जड़ है, विनश्वर है, इसी से मैं अविनश्वर सुख का मार्ग बना लूँ अतः मेरे पुत्रों की रक्षा कीजिए।

(राजा अरविंद विवश हैं किन्तु मौनपूर्वक स्वीकृति देते हैं और परम्परा से आगत मंत्रीपद पर कमठ एवं मरुभूति पुत्रों को नियुक्त कर देते हैं)

—दूसरा दृश्य—

(महाराज अरविंद चिंतित मुद्रा में मंत्रशाला में बैठे विचार-विमर्श कर रहे हैं)

महाराजा—मंत्रीगण! राजा वज्रवीर्य अब बिल्कुल निरंकुश हो चुका है अतः उसको जीतने के लिए शीघ्र ही प्रस्थान कर देना चाहिए।

मंत्रीगण—जो आज्ञा महाराज।

(आज्ञा पाते ही सभी सैनिक युद्ध के लिए सज-धजकर तैयार हो रहे हैं। तभी सेनापति प्रवेश करते हैं)

सेनापति—महाराज! सब व्यवस्था हो चुकी है। अब आप हाथी पर सवार होइए, सामने हाथी खड़ा है।

महाराज—(मंत्री कमठ से) मंत्रिवर! चूँकि हम युद्ध के लिए प्रस्थान कर रहे हैं अतः आज से पोदनपुर की सारी व्यवस्था की जिम्मेदारी हम आपके ऊपर डाल रहें हैं।

कमठ—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है महाराज।

निर्देशक—(माता अनुंधरी की कुक्षि से जन्मे दोनों पुत्रों में धरती-आसमान का अंतर था, एक पाप था, दूसरा पुण्य, एक विष था दूसरा अमृत, अर्थात् कमठ अत्यन्त कुटिल परिणामी, कुनीति में कुशल दुष्टात्मा था और मरुभूति अत्यन्त सरल स्वभावी, अतिशय निपुण धर्मात्मा था। मंत्री कमठ समय पाकर निरंकुश हो गया और स्वयं को राजा घोषित कर अन्याय का साम्राज्य फैला दिया)

(दृश्य परिवर्तन—कमठ का घर)

कमठ—(अट्टहास करता हुआ) हा हा हा हा! मैं पोदनपुर का राजा हूँ, सबको मेरी आज्ञा में ही रहना पड़ेगा। (तभी किसी युवती के नूपुरों की झंकार सुनाई देती है)

कमठ—(मन में) ओह! ये नूपुरों की आवाज! सामने हंस गति से चलने वाली सुंदर रत्नआभूषणों से अपने सौन्दर्य को द्विगुणित करती हुई यह युवती कौन है? क्या यह नागकन्या है या देवकन्या है या कोई अप्सरा है?

(निर्णय होने के बाद) ओह! यह तो मेरे लघुभ्राता की भार्या वसुंधरी है। (एक क्षण को सहम जाता है, फिर मन ही मन स्वयं को धिक्कारने लगा) अरे रे! पगले! यह तो अपनी पुत्रवधू के समान है, यह कैसे मिल सकती है?

(कमठ वसुंधरी के निकल जाने के बाद भी उससे अपना ध्यान नहीं हटा

पाता है और उसका मन विह्वल हो रहा है। वह वहाँ से निकलकर सोने की चेष्टा करता है)

–तीसरा दृश्य–

(कमठ शैय्या पर लेटा है। निद्रा के न आने से उसके नेत्र एकदम लाल हो रहे हैं तभी उसका अभिन्न मित्र कलहंस प्रवेश करता है। मित्र की ऐसी दुरवस्था देखकर वह एकदम घबरा उठा)

कलहंस–ओहो मित्र! यह क्या स्थिति बना ली है और मुझे सूचना तक नहीं है कि आपका स्वास्थ्य कुछ अस्वस्थ है। हाँ, मै शीघ्र ही राजवैद्य को बुलाकर लाता हूँ।

कमठ–नहीं-नहीं मित्र। नहीं, मुझे कुछ व्याधि नहीं है, तुम आओ और मेरे पास बैठो। अरे, राजवैद्य मेरा क्या इलाज करेगा? मेरी औषधि तो तुम्हीं हो जो कि समय पर आ गए हो।

(कलहंस कमठ से इधर-उधर की बातें करने लगता है पुनः उसके व्याकुल तथा मुरझाए हुए चेहरे को देखकर धीरे से पूछता है)

कलहंस–कहो मित्र! आखिर तुम्हें किस मानसिक व्यथा ने पीड़ित किया है? स्पष्ट कहो, मैं शीघ्र ही उस वेदना का प्रतिकार करूँगा।

कमठ–क्या कहूँ मित्र! जब से मैंने लघुभ्राता की पत्नी उस वसुंधरी को देखा है तभी से मुझे कामज्वर ने घेर लिया है। उस अंगना का स्पर्श कराकर तुम मुझे शीघ्र ही स्वस्थ करो।

(यह सुनकर कलहंस घबराकर दोनों हाथों से कानों को बंद कर लेता है। पुनः कुछ क्षण बाद कहता है)

कलहंस–कमठ! तुमने यह क्या अतिसाहस का विचार किया है? क्या यह संभव है? क्या राजा अरविंद जैसे न्यायप्रिय और लोकप्रिय राजा के रहते हुए यह अनर्थ कर सकते हो? क्या वह पुत्री सदृश अनुंधरी तुम्हारे भोगने योग्य है? मित्र! छोड़ो-छोड़ो, इस दुराग्रहरूपी पिशाच का पल्ला छोड़ो और अपने स्वभाव में आओ! देखो! क्या हमारी भाभी 'वरुणा' सौन्दर्य में किसी से कम है? वह यह सुनेंगी तो क्या सोचेंगी? इस चरित्रहीनता से आपकी कितनी हानि होगी? क्या गति होगी? क्या आपने इस पर विचार किया?

(कमठ मित्र की शिक्षास्पद बातें सुनकर क्रोध से भभक उठा, उसका चेहरा तमतमा उठा)

कमठ–(आवेश में) मित्र! बस-बस रहने दो! बस, तुम्हारी शिक्षाओं को रहने दो, मैं तुमसे भी अधिक शिक्षाओं को जानता हूँ किन्तु मैं राजा हूँ। यह वसुंधरी ही क्या इस पोदनपुर में जो-जो सुंदर वस्तु होगी उसे भी क्षणमात्र में हस्तगत कर सकता हूँ। देखो! राजा अरविंद और भाई मरुभूति तो हैं नहीं! राज्यसत्ता मेरे ही हाथ में है। बस, शीघ्रता करो।

कलहंस–लेकिन मित्र! एक बार पुनः विचार कर लो।

कमठ–देखो! यदि तुम मेरे सच्चे-अभिन्न मित्र हो तो शीघ्र ही उस सुन्दरी से मेरा समागम करा दो।

(कलहंस–मित्र के दुराग्रह को पूर्ण करने के लिए उपाय सोचता है और कहता है)

कलहंस–मित्र कमठ! मैं तुम्हारा कार्य बहुत शीघ्र ही सिद्ध किए देता हूँ। तुम चिंता छोड़ो और भोजन करो।

कमठ–(प्रसन्न होकर) धन्यवाद मित्र।

–चौथा दृश्य–

(पोदनपुर का उद्यान) (लताकुंज में वसुंधरी का प्रवेश। कमठ गुलाब के पुष्पों की शय्या पर लेटा है। उसे देखते ही हर्षित मन होता हुआ बोलता है)

कमठ–आओ, आओ, प्रिय वल्लभे आओ!! तुम्हारी विरहाग्नि से झुलसे हुए इस शरीर को और मन को शीघ्र ही अधरामृत से सिंचित करो, शांत करो।

(वसुंधरी अकस्मात् इस वातावरण को देखकर घबराकर कांपने लगती है और भगवान का स्मरण करने लगती है)

वसुंधरी–(हाथ जोड़कर इष्टप्रार्थना करते हुए) हे प्रभो! इस दुष्ट कलहंस ने मुझे कैसे फंसाया। मेरे साथ क्या छल रचा। हाय! हाय! अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? कैसे मेरी रक्षा होगी?

(इधर वह अपनी रक्षा का उपाय सोच ही रही थी कि पापी कलहंस बाहर से दरवाजा बंद कर देता है तथा दुष्टात्मा कमठ शीघ्र ही उठकर दोनों हाथों से उठाकर उसे अपनी पुष्पशय्या पर बिठा लेता है। तब वह साहस बटोर कर कहती है)

वसुंधरी–(प्रार्थना भरे स्वर में) तात! आप मेरे पतिदेव के बड़े भ्राता होने से मेरे पूज्य पितातुल्य हैं। आपको यह नीच कृत्य करना शोभा नहीं देता है। अरे! सर्वत्र शहर में आपकी दुष्टता की चर्चा है। फिर उसमें आप एक और

कलंकी बनने का साहस कर रहे हैं। मैं इस समय आपसे अपने सतीत्व की, शील की भिक्षा मांगती हूँ।

कमठ—प्राणप्रिये! देखो तो सही, तुम्हारे बिना मेरा रोम-रोम व्यथित हो रहा है। यह धर्मचर्चा का समय नहीं है।

निर्देशक—(कुछ क्षण के अनंतर वसुंधरी ने अपने अमूल्य शीलरत्न को खो दिया और अब प्रणय बंधन में दोनों कुल कलंकियों के दिन गुजर रहे हैं)

निर्देशक—(इधर महाराज अरविंद राजा वज्रवीर्य को जीतकर वापस आ रहे हैं। वे आज बहुत ही प्रसन्न हैं क्योंकि वे विजय के नगाड़ों से दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए वापस आ रहे हैं। पूरे पोदनपुर में महाराज के स्वागत की जोरदार तैयारी चल रही है।)

(अगले दिन राजसभा लगती है)—

—राजदरबार का दृश्य—

(महाराज मरुभूति को अपने पास बुलाते हैं)

महाराज—(मरुभूति से)—मंत्रिवर! क्या यह बात सही है जो कि गुप्तचरों और विश्वस्तजनों के द्वारा हमें मिली है।

(मंत्री निरुत्तर किंतु माथा नीचे किये चुपचाप खड़े हैं। राजा पुनः पूछते हैं)

महाराज—तो फिर बताओ उस दुष्ट कमठ को क्या दण्ड देना चाहिए?

मरुभूति—(हाथ जोड़कर) महाराज! एक बार आप उसे क्षमा प्रदान करें मेरी यही आपसे विनती है।

महाराज—(क्रोधित मुद्रा में) क्षमा, क्षमा!! अशक्य है, असंभव है। मंत्री जी! व्यभिचार जैसे पाप में भाई, बंधु और पुत्र का मोह न्याय संगत नहीं है। न्यायप्रिय राजा अन्याय में अपने पुत्र को भी प्राणदंड देने से नहीं चूकते हैं और तभी वे यशस्वी होते हैं।

(अनन्तर राजा कोतवाल को बुलाकर आज्ञा देते हैं)

महाराज—(कोतवाल से)-कोतवाल! अतिशीघ्र ही पापी कमठ का सिर मुंडाकर इसका मुख काला कर गधे पर बिठाकर पूरे शहर में घुमाओ ताकि लोग जान सकें कि दुष्कृत्य का क्या फल मिलता है।

कोतवाल—जो आज्ञा महाराज।

(कोतवाल राजाज्ञा का पालन करता है। आगे-आगे ढोल बज रहा है और पीछे-पीछे कमठ गधे पर सवार है, सभी कमठ के इस अपमान को देख-देखकर हंस रहे हैं)

—पाँचवा दृश्य—

ढोलक वाला—(आगे-आगे चलते हुए) जो भी ऐसा दुष्कर्म करेगा उसको ऐसा ही दण्ड दिया जाएगा।

पुरवासी—अरे! देखो तो! इस पापी को इसके किये की कैसी सजा मिली है।

एक—(हँसकर) हाँ भाई! ऐसा दुष्कर्म करने वाले के लिए यह सजा कम ही है।

कुछ बच्चे—चल, चल, भाई! इस गंजे को कंकड़-पत्थर मार कर मजे लेते हैं। (ऐसा कहकर कंकड़ मारते हुए बच्चे खूब मजे लेते हैं)

(कोतवाल ने इस विधि से उसे अपमानित कर देश से निकाल दिया। महादण्ड को भोगकर अपमानित कमठ भूताचल पर्वत पर तापसियों के आश्रम में पहुँचता है)

—छठा दृश्य—

भूताचल पर्वत का दृश्य

निर्देशक—(अनेक तापसी समीचीन ज्ञान के बिना मात्र अपने शरीर का शोषण करते हुए तप कर रहे हैं, कोई-कोई पंचाग्नि तप कर रहे हैं, कोई शरीर में भस्म रमा रहे हैं इत्यादि। कमठ उन्हें नमस्कार कर प्रमुख गुरु के पादमूल में पहुँचकर तापसी दीक्षा ले लेता है)

कमठ—प्रणाम गुरुदेव!

तापसी—आयुष्मान भव वत्स।

कमठ—गुरुदेव! मुझे भी तापसी दीक्षा प्रदान कर कृतार्थ करें।

तापसी—ठीक है वत्स!

निर्देशक—(कमठ दीक्षा लेकर हाथ में पत्थर की शिला लेकर खड़ा होकर तपश्चरण करने लगा। इधर मरुभूति भाई से मिलने की उत्कंठा से उसे ढूँढ़ता हुआ वहीं पहुँच जाता है। दूर से तापसियों के बीच प्यारे भाई को देखकर पहचानकर, ऐसी रूक्ष और विवर्ण दशा को देखकर दुःखी हुआ मरुभूति कमठ के पास जाकर निवेदन करता है)

मरुभूति—(प्रार्थना भरे स्वर में) हे भाई! तुम्हारा हृदय विशाल है। जो कुछ हुआ वह सब अपराध क्षमा करो और घर चलो।

(कमठ उसकी ओर क्रोधित दृष्टि से देखता है)

मरुभूति—(पुनः कहता है)-हे बंधु! जो कुछ हुआ वह सब अपराध क्षमा

करो। तुम्हारे बिना मुझे घर में अच्छा नहीं लगता है।

(इतना बोलते हुए सरल मन से मरुभूति कमठ के पैरों में गिरकर नमस्कार करने लगा। बस, उसी समय कमठ के मन में क्रोध उत्पन्न हुआ)

कमठ—अरे! यह दुष्टात्मा पहले तो मुझे खूब अपमानित कर चुका है और अब बातें बनाकर सफाई देने आया है। अभी बताता हूँ इसे। (इतना कहकर क्रोध में अंधा वह तापसी कमठ शीघ्र ही अपने हाथ की शिला छोटे भाई के सिर पर पटक देता है)

कमठ—ले दुष्ट! मैं यह शिला तेरे सिर पर पटक कर तेरा काम खत्म किये देता हूँ।

(भाई के सिर पर वज्र सदृश शिला के पड़ते ही खून के फव्वारे निकल पड़े। निकट ही तपस्या में रत हुए तापसियों से यह कुकृत्य देखा न गया और वे हाहाकार कर उठे)

एक तापसी—अरे देखो तो! इस नये साधु ने क्या अनर्थ कर दिया। विनय से युत अपने भाई को ही मार डाला।

दूसरा तापसी—धिक्कार है, धिक्कार है। अरे जल्दी कोई गुरुदेव को सूचना दो। इस पापी ने यह क्या किया?

तीसरा तापसी—साधु होकर हत्या, अरे इतनी कषाय?

(तभी किसी के द्वारा सूचना प्राप्त होने पर प्रमुख तापसी गुरु आ जाते हैं और क्रोधित हो उठते हैं)

तापसी गुरु—अरे दुष्ट! क्या तूने इसीलिए दीक्षा ली थी। अरे! ऐसा ही निंद्य कृत्य करना था तो तू यहाँ आया ही क्यों था। धिक्कार है, तूने हम सब पर कलंक लगा दिया। (पुनः आदेशात्मक स्वर में) जा! निकल जा यहाँ से! आज से इस आश्रम में तेरे लिए कोई स्थान नहीं है।

(ऐसा कहकर तापसी गुरु ने उसे तत्क्षण ही आश्रम से बाहर निकाल दिया। वहाँ से निकलकर वह दुष्ट वन में जाकर भीलों से मिल गया और चोरी, डकैती करने लग गया। एक बार वह राज्य में चोरी करने गया।

—सातवाँ दृश्य—

कमठ—(अपने साथियों से) चलो मित्रों! आज किसी बड़े सेठ के यहाँ चोरी करने चलते हैं।

भील साथी—चलो यार! जब तुम जैसा साथी हो तो किस बात का डर।

(सभी चोरी के लिए जाते हैं लेकिन कोतवाल के द्वारा पकड़ लिए जाते हैं)

कोतवाल—बहुत दिनों से इन चोरों ने नाक में दम कर रखा है। आज तो इन्हें पकड़कर ही रहूँगा। (तभी उसे पास के घर से कुछ आहट सुनाई देती है)

अच्छा तो आज पकड़ में आ ही गए। अभी बताता हूँ। (एक किनारे छुप जाता है और चोरी करके घर से निकलते हुए उन चोरों को पकड़ लेता है)

(सभी को बंदी बनाकर) अब पकड़ में आए बच्चू! काफी दिनों से चकमा देकर भाग जाते थे, आज खबर लूँगा तुम सबकी। (सभी को खूब मारता है और ले जाकर कारागार में डाल देता है)

निर्देशक—(इस प्रकार वह पापी कमठ नाना प्रकार के दुःखों को भोगता हुआ अपनी आयु पूर्ण कर तीव्र पापकर्म के उदय से सल्लकी नामक वन में विशाल सर्प हो जाता है और मरुभूति का जीव मोहकर्म के उदय से मरकर उसी वन में विशालकाय हाथी हो जाता है।)

भजन

तर्ज-कांची हो कांची रे.....

आया है आया पार्श्वनाथ का महोत्सव, करना है काम दिल खोल के।
आया तृतीय सहस्राब्दी महोत्सव, पारस प्रभू की जय बोल के।।टेक.।।
तेइसवें तीर्थंकर पारसनाथ प्रभो,
अश्वसेन वामा माँ के लाल प्रभो।
माता-पिता धन्य हुए, जिनवर के जन्म से,
बैठे थे भण्डार खोल के।। आया है.....।।1।।
चिन्तामणि संकटमोचन कहते सभी,
पारस प्रभु की भक्ति मन से करते सभी।
जिसको जब कष्ट हुआ, भक्ती से नष्ट हुआ,
पारस की जय-जय बोल के।।आया है.....।।2।।
अपने-अपने नगरों में भी उत्सव करो,
पारसनाथ जन्म का महोत्सव करो।
तीर्थ बनारस के बाद, अहिच्छत्र पार्श्वनाथ,
सम्मेदगिरि की जय बोल के।।आया है.....।।3।।
गणिनीप्रमुख ज्ञानमती माताजी हैं,
ऐसी प्रेरणाएं सदा देती हैं वे।
''चन्दना'' तभी हमें, ज्ञान प्राप्त होता है,
बढ़ते कदम सबको जोड़ के।।आया है.....।।4।।

वज्रघोष हाथी (दूसरा भव)

(अति सघन सल्लकी नाम का वन है। जहाँ आज हर्ष का वातावरण है क्योंकि आज इस वन में विशाल मुनिसंघ ठहरा हुआ है)

निर्देशक–(कहीं-कहीं ऊँचे वृक्षों के नीचे कुछ मुनि मिलकर स्वाध्याय कर रहे हैं। कहीं कोई मुनि अपनी शुद्धात्मा के ध्यान में निमग्न हैं, कुछ मुनि जिनेन्द्रदेव की आराधना में तत्पर हो स्तुति से दिशाओं को मुखरित कर रहे हैं। उसी वन में मर्कट, सिंह-व्याघ्र आदि जीव-जन्तु विचरण कर रहे हैं। कहीं श्रावक-श्राविकाएं भोजन बनाने में व्यस्त हैं, कहीं श्रावक भगवान की पूजा में संलग्न हैं। संघ शिरोमणि आचार्य श्री अरविंद मुनिराज शुद्ध पाषाण शिला पर विराजमान निजात्मा का चिंतन कर रहे हैं)

एक मुनिराज–महाराज जी! देखो तो, इस शास्त्र में कितनी सुन्दर पंक्तियाँ लिखी हैं। लिखा है–

शिवं शुद्ध बुद्धं परम विश्वनाथं,
न देवो न बंधुर्न कर्ता न कर्म।
न अंगं न संगं न इच्छा न कायं,
चिदानन्द रूपं नमो वीतरागं।।

दूसरे मुनिराज–हाँ महाराज जी! इसी वीतराग अवस्था को प्राप्त करने के लिए ही तो हम सब तपश्चर्या कर रहे हैं।

दूसरी ओर–एक मुनिराज (भगवान की भक्ति करते हुए)

आदीश्वरादि जिनसूर्य युगादि नाथः।
साकेतशासनपतिः पुरुदेव नाथः।।
स्वायम्भुवः सकल लोक हितंकरो यः।
तं नाभिनन्दन जिनं प्रणमामि नित्यं।।

वहीं एक श्रावक भगवान की पूजा कर रहे हैं–

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

एक ओर–(कुछ श्रावक-श्राविकाएं आहारचर्या की सामग्री जुटा रहे हैं)

हर्षित–अरे भाई! जरा जल्दी करो। आहार चर्या का समय होने वाला है।

गौरव–हाँ भइया! सारी तैयारी हो चुकी है बस, चौक पूरना बाकी है। (पास खड़ी बहन से) संस्कृति बहन! जरा चौक तो पूर देना।

संस्कृति–अच्छा भइया। (कहकर चौक पूरने लगती है)

(तभी बाहर कोलाहल सुनाई देता है और कुछ श्रावकगण इधर-उधर भागते हुए नजर आते हैं)

गौरव–बहना! देख तो यह शोर कैसा है?

संस्कृति–पूछती हूँ भइया। पता नहीं क्या बात है? लोग इधर-उधर क्यों भाग रहे हैं? (एक श्रावक से)

भइया! क्या हुआ? आप सब इतने घबराए हुए क्यों हैं?

एक श्रावक–बहन! एक विशाल हाथी पूरे संघ में क्षोभ को उत्पन्न कर रहा है, ना जाने कितने ही श्रावकों को गिरा दिया।

(तभी वहाँ गौरव, हर्षित एवं संस्कार भी आ जाते हैं)

हर्षित–क्या हुआ भाई?

दूसरा श्रावक–भइया! एक हाथी ने बहुत परेशान कर डाला है, पूरे संघ को अस्त-व्यस्त कर दिया है।

गौरव–क्या! अब क्या होगा?

एक श्राविका–हाँ, उस क्रूर हाथी ने कितने ही हाथी, घोड़ों और गाय-बैलों को मार डाला है। कितने ही ऊँटों को गिरा दिया जो कि बेचारे पुनः नहीं उठ सके।

दूसरी श्राविका–और तो और भाई! उसने पाकशाला में व्यस्त हुई महिलाओं को दुःखी कर दिया।

संस्कार–(चिंतित मुद्रा में) ओह! यह तो मुनि संघ पर उपसर्ग ही आ गया। कहीं वह किसी मुनि का अहित न कर देवे।

संस्कृति–हाँ भाइयों-बहनों! जल्दी सोचो। इस उपसर्ग का निवारण कैसे हो। चलो जल्दी चलो, सभी आचार्यश्री के पास चलकर देखें।

(सभी भागकर आचार्यश्री के पास पहुँचते हैं और देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं कि वह हाथी मदजल बरसाता हुआ मुनिराज अरविंद के पास ही पहुँच गया है)

एक श्रावक–(चिंतित मुद्रा में) अरे! अब क्या होगा? वह तो आचार्यवर्य के पास ही पहुँच गया।

दूसरा–(घबड़ाकर) हे भगवन्! रक्षा करो। इस उपसर्ग को दूर करो।

श्राविका–अरे! कोई तो आओ! कहीं यह गुरुवर का कुछ अहित न कर देवे।

(सभी श्रावक-श्राविकाएं आकुल-व्याकुल हो इधर-उधर भागदौड़ कर रहे हैं परन्तु सूरिवर्य गुरुदेव सुमेरुपर्वत के समान अचल हैं। उनके वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिन्ह था। उसको देखते ही उस गजराज को जातिस्मरण हो गया)

(वह वज्रघोष हाथी मुनिराज को एकटक देख रहा है)

हाथी—(मन में) ओह! यह तो मेरे पूर्वजन्म के स्वामी हैं और मैं इनका मंत्री मरुभूति था।

(जातिस्मरण होते ही वह क्रूर हाथी एकदम शांत हो गया और मुनिराज के चरणों में मस्तक टेक दिया। तब मुनिराज ने उसे सम्बोधित किया)

मुनिराज—हे गजराज! तुमने यह क्या किया? अरे! यह हिंसाकर्म महान दुःखों को देने वाला है। यह हिंसा स्व और पर दोनों को दुखदायी है।

(पुनः उसे ध्यान से सुनते देखकर कहते हैं)

अहो! तुमने ब्राह्मण के पुत्र मरुभूति मंत्री की पर्याय से भाई के प्रति आर्तध्यानपूर्वक मरकर यह तिर्यंचयोनि पाई है। मैं अरविंद राजा तुम्हारा स्वामी था। मैंने तुम्हें इस दुष्टात्मा कमठ से मिलने को मना किया था पर तुम नहीं माने और उस दुष्ट तापसी ने तुम्हारे सिर पर शिला पटक दी।

(गजराज को एक-एक बातें स्मरण हो आती हैं तब मुनि पुनः कहते हैं)

तुम भाई के मोहरूपी आर्त परिणाम से मरकर इस गजयोनि में आ गए हो, उस कमठ की भार्या वरुणा भी कालांतर में मरकर तुम्हारी हथिनी हुई है। जिस भावज को तुमने माता के समान समझा था आज तुम उसी के साथ रमण करते हुए सुखी हो रहे हो। अरे करपति! देखो, देखो, संसार की विचित्रता तो देखो।

(उस समय हाथी के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी मानो उसके अंतरंग से मिथ्यात्व और दुर्ध्यान ही अश्रुजल के बहाने निकल रहे हैं)

(दूर खड़े श्रावकगण अचरज में हैं कि यह क्रूर हाथी इतना शांत कैसे है?)

एक श्रावक—अरे-घोर आश्चर्य! इतना क्रूर हाथी और एकदम शांत। यह कैसे हुआ?

दूसरा—शायद वीतराग मुद्रा की ही महिमा है।

तीसरा—भाई! मुझे तो लगता है कि उसे जातिस्मरण हो गया है।

एक श्राविका—(आश्चर्य से) जातिस्मरण?

दूसरी श्राविका—हाँ, मैंने पुराणों में ऐसे कथानक कई-कई बार पढ़े हैं।

तीसरी श्राविका—चलो बहनों-भाईयों! हम भी पास जाकर देखें कि मुनिराज उसे क्या उपदेश दे रहे हैं।

सभी—हाँ, हाँ, चलो चलते हैं।

(इधर मुनिराज उसे निरन्तर सम्बोधित कर रहे हैं)—

मुनिराज—हे गजेन्द्र! मैंने तुम्हारे वियोग से दुःखी होकर अवधिज्ञानी महामुनि से पूछा था कि मेरा प्रिय मंत्री मरुभूति अभी तक क्यों नहीं आया, तब उन्होंने सारी घटना सुनाई थी। पुनः एक दिन मैं महल के ऊपर छत पर प्राकृतिक सुषमा को देख रहा था कि अकस्मात् आकाश में मेघ से निर्मित एक सुन्दर मंदिर दिखाई पड़ा और मैं उसे साकार रूप देने के लिए कागज-कलम उठाकर उसका चित्र खींचने ही वाला था कि वह सुन्दर भवन विघटित हो गया। बस, मुझे संसार, शरीर व भोगों से विरक्ति हो गई और मैंने निर्ग्रन्थ गुरु के सानिध्य में जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। इस समय मैं चतुर्विध संघ सहित सम्मेदशिखर महातीर्थ की वंदना के लिए जा रहा हूँ। इसकी वंदना करने वाले जीव भव्य ही होते हैं और 49 भव के अंदर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

(गजराज अब और शांतचित्त हो महामुनि की धर्ममयी वाणी का पान कर रहा है और श्रावकगण भी वहीं आकर बैठ जाते हैं और उपदेशामृत सुनने लगते हैं)

मुनिराज पुनः उसे सम्बोधित करते हैं—

गजराज! अब तुम मिथ्यात्वरूपी विष का वमन करो और पाँचों पापों का त्याग करो। यह सम्यग्दर्शन ही मोक्ष महल में चढ़ने के लिए पहली सीढ़ी है। दयामयी धर्म ही सच्चा धर्म है, निर्ग्रन्थ गुरु ही सच्चे गुरु हैं। बस, इन्हीं का दृढ़ श्रद्धान करना ही सम्यग्दर्शन है। निःशंकित आदि आठ अंग हैं इसके बिना यह दर्शन संसार की बेल को उखाड़ने में समर्थ नहीं है।

सुनो! अब तुम पंच उदुम्बर फल और मद्य, मांस, मधु का त्याग करो। पंच अणुव्रतों का पालन करो। इनकी रक्षा करने वाले सात शीलों का पालन करो। इन व्रतों के प्रभाव से तुम नियम से देवगति को प्राप्त करोगे।

निर्देशक—(इस प्रकार से गुरुदेव ने विस्तार के साथ सम्यक्त्व और व्रतों का उपदेश दिया तब हाथी उन व्रतों को ग्रहण करके अपने हर्ष को व्यक्त करते हुए बार-बार गुरुदेव को नमस्कार करने लगा और बार-बार पृथ्वीतल पर मस्तक टेक-टेककर अपनी श्रद्धा प्रकट करने लगा)

(गजराज को श्रावक जानकर सभी श्रावकगण उसे मिष्ठान्न आदि खिलाकर प्रासुक जल पिलाते हैं)

एक श्रावक—भइया! क्या आश्चर्य की बात है कि हाथी जैसा पशु भी श्रावक हो गया है।

दूसरा—हाँ! उसने मुनिराज से पंच अणुव्रत ग्रहण कर लिए हैं।

तीसरा—चलो चलें, उसे मिष्ठान्न और प्रासुक जल दे कर आते हैं।

सभी तैयार हो जाते हैं—हाँ, हाँ चलो चलते हैं, उसे कुछ खिला-पिला भी दें और आचार्यश्री के दर्शन भी कर लें।

श्राविका—हाँ, मैं भी चलूँगी, क्योंकि मैंने सुना है कि आचार्य श्री वहाँ से विहार कर सम्मेदशिखर की ओर प्रस्थान कर रहे हैं।

(सभी उसे मिष्ठान्न आदि खिलाते हैं पुनः एक श्राविका कहती हैं)

श्राविका—आइए चलते हैं, क्योंकि आचार्यवर्य संघ सहित शिखरजी की ओर विहार कर रहे हैं।

(हाथी भी यह सुनकर कुछ दूर तक संघ के साथ जाकर गुरुदेव को पहुँचाकर आया और गुरु के पादकमल का स्मरण करते हुए वहीं सल्लकी वन में रहने लगा)

(अब हाथी संयमासंयम को साध रहा है। वह सम्यग्दृष्टि है, किसी भी जीव को भूलकर भी नहीं सताता है। अपने शरीर को कृश करते हुए इन्द्रियों को दमन कर रहा है। अपने शीलव्रत को पालन करने में कुशल वह हाथी हथिनी के पास भी नहीं जाता है। उस निर्जन वन में अन्य जंतुओं द्वारा किए गए उपसर्गों को सहन करने में समर्थ होता हुआ अपने मन में किंचित् भी दुर्ध्यानन्हीं लाता है। इस प्रकार बहुत काल तक दुर्द्धर तप करते हुए उसकी शक्ति क्षीण हो गई फिर भी वह पंचपरमेष्ठी के चिंतवन में अपने मन को क्षीण नहीं करता है।)

एक दिन वह करीन्द्र प्यासा हुआ वेगवती नदी के तट पर आया और सूंड़ से फूँक करके जल को प्रासुक किया, पुनः जल पीने लगा।

हाथी—(मन में) बहुत प्यास लगी है, जल को प्रासुक करके थोड़ा सा जल पी लूँ।

(तभी) अरे! यहाँ तो कीचड़ बहुत अधिक है, अरे! मेरा तो पैर ही फंसा जा रहा है। हे भगवान्! अब मैं बाहर कैसे निकलूँ।

(हाथी कीचड़ में बुरी तरह फंस गया है और मन ही मन सोचता है)—

अब मुझे इस अथाह कीचड़ से कोई भी निकालने वाला नहीं है जैसे मोहरूपी कीच में फंसे हुए संसारी जीव को इस संसाररूपी अथाह समुद्र से निकालने वाला कोई नहीं है। हाँ! यदि मैं सल्लेखनारूपी बंधु का सहारा ले लूँ तो वह मुझे अवश्य ही यहाँ से निकालकर उत्तम देवगति में पहुँचा सकता है।

निर्देशक—(ऐसा निश्चय कर गजराज ने चतुराहार का जीवन भर के लिए त्याग करके महामंत्र का स्मरण करते हुए पंचपरमेष्ठी का अवलम्बन ले लिया। कुछ काल बीता ही था कि एक कुक्कुट जाति का सांप वहाँ आ गया और पूर्व जन्म के बैर के संस्कार से उसे डस लिया)।

गजराज वेदना से व्याकुल हो रहा है किन्तु गुरुदेव द्वारा प्राप्त उपदेश से स्वयं को संभाले हुए है।)

हाथी—हे प्रभू! इस सर्प ने अकारण ही मुझे डस लिया। एक तो कीचड़ से न निकल पाने की वेदना और दूसरी इसके काटने की वेदना। फिर भी मुझे संतोष रखना होगा क्योंकि गुरुदेव ने कहा था कि यह आत्मा भिन्न है-शरीर भिन्न है-2।।

निर्देशक—(ऐसा वाक्य स्मरण करते हुए वह शरीर से अपनी आत्मा को पृथक् समझ पंचपरमेष्ठी का ध्यान करने लगा और अपने परिणामों को स्थिर करके धर्मध्यानपूर्वक इस नश्वर देह का त्यागकर बारहवें स्वर्ग में स्वयंप्रभ विमान में 'शशिप्रभ' देव हो गया।)

G G G G G

शशिप्रभ देव (तीसरा भव)

–प्रथम दृश्य–

(मंच पर सामूहिक प्रार्थना)

स्वर्ग का दृश्य–इन्द्रसभा में अप्सरा का नृत्य।

(बारहवें स्वर्ग में इन्द्रसभा लगी है। आज वहाँ चर्चा चल रही है कि आज हमारे स्वर्ग में मर्त्यलोक का एक तिर्यंच जीव हाथी की पर्याय से निकलकर शशिप्रभ देव के रूप में जन्म लेने वाला है।

सहस्रार इन्द्र–स्वर्गलोक के मेरे प्रिय देवों! देवियों! आज हमारे स्वर्ग में एक पुण्यशाली नए देव का आगमन होने वाला है, सो आप सब उसके स्वागत की तैयारी करें।

एक देव–स्वामी! आप किस पुण्यशाली जीव की बात कर रहे हैं?

दूसरा देव–हाँ इन्द्रराज! यहाँ तो हमेशा ही अनेक देव-देवी जन्म लेते रहते हैं, लेकिन ऐसी चर्चा होते मैंने नहीं देखी। आज कौन से विशेष देव यहाँ आने वाले हैं?

सहस्रार इन्द्र–हाँ, बताता हूँ, वह वास्तव में विशेष ही है। अभी-अभी कुछ देर पहले ही मध्यलोक के आर्यखण्ड में सल्लकी नामक वन में एक हाथी का जीव सल्लेखनापूर्वक मरण कर अपना शरीर छोड़कर यहाँ शशिप्रभ देव के रूप में जन्म लेने वाला है।

इन्द्राणी–हे पुरन्दर! एक हाथी का जीव और देव?

इन्द्र–हाँ देवी! यही तो जैनधर्म की महिमा है। जो जीव अणुव्रती या महाव्रती है वह नियम से देवगति में ही आवेगा।

इन्द्राणी–क्या वह दोबारा मनुष्य नहीं हो सकता है?

इन्द्र–नहीं देवी! देखो-अणुवद महव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं। अर्थात् देवायु के सिवा अन्य आयु के बंध जाने पर यह जीव अणुव्रत और महाव्रत को ग्रहण नहीं कर सकता है और उस हाथी ने भी अरविंद मुनि से पंच अणुव्रत लिए थे और उसका पूरा पालन किया था।

तीसरा देव–देवराज! उसमें ऐसी क्या विशेषता है जो इतनी श्रद्धा से आप उसका नाम ले रहे हैं।

सहस्रार इन्द्र–मित्र! उसकी विशेषता यह है कि वह अब से सातवें भव में जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में तेईसवाँ तीर्थंकर होने वाला है।

–द्वितीय दृश्य–

निर्देशक–(स्वर्ग में सुन्दर सुसज्जित शैय्या बनी हुई है, शैय्या ऊपर चारों ओर से ढ़की हुई है। उसके अन्दर एक नवयुवक मानों सो रहा है। बाजे, नगाड़ों की ध्वनि हो रही है, पुष्पों की वर्षा तथा मन्द-मन्द वायु चल रही है कि तभी अनेक देव-देवी उस शैय्या के समीप पहुँचकर नमस्कार की मुद्रा में खड़े हो जाते हैं)

शशिप्रभ देव–(शैय्या पर उठकर बैठे और आगे से शैय्या का पर्दा हटाया) ॐ नमः सिद्धेभ्यः (णमोकार मंत्रोच्चारण) (आश्चर्य से) ओह! मैं कौन हूँ? मैं कहाँ आ गया? यह सुन्दरता मैं कहाँ की देख रहा हूँ? ये सब मुझे नमस्कार क्यों कर रहे हैं?

देवगण–हम सभी देवों का प्रणाम स्वीकार करें, देव! स्वर्ग में आपका शुभागमन मंगलमय हो। आप यहाँ यह सब स्वर्ग का सौन्दर्य देख रहे हैं। शशिप्रभ नामक देव के रूप में आपका यहाँ जन्म हुआ है।

शशिप्रभ देव–(अवधिज्ञान से सारी बातें जानकर) मैं हस्तीचर हूँ, ओहो!! यह स्वर्गपुरी है और यह अतुल वैभव।

देवगण–स्वामिन्! आप जिनशासन के प्रभाव से इस उत्तम लक्ष्मी को प्राप्त हुए हैं। आप उठिए और मंगल स्नान कीजिए, पुनः वस्त्रालंकार से भूषित होकर जिनेन्द्र भवन में जिनप्रतिमाओं की पूजन करिये। अनन्तर अपने वैभव का निरीक्षण कीजिए और उत्तम-उत्तम भोगों का अनुभव कीजिए।

एक देव–(समीप जाकर) हे स्वामिन्! आप पुण्यवान हैं, आपकी सदा विजय हो। हे नाथ! स्नान की सामग्री तैयार है।

शशिप्रभ देव–(चिन्तन मुद्रा में) ये देवांगनाएं, ये परिवार देव, यह सब पुण्य का प्रसाद है। मैंने गुरुदेव के द्वारा जो सम्यक्त्वरूपी रत्न और अणुव्रतरूपी निधि प्राप्त की थी उसी के फलस्वरूप यह तेजोधाम प्राप्त हुआ है।

(शशिप्रभ देव ने भी अपनी प्रसन्नता से सबको प्रसन्न करते हुए यथोचित क्रिया करके पहले जिनपूजा की) (मंदिर का दृश्य दिखाकर देव को परिवार देवों के साथ पूजा करते हुए दिखावें)

(पुनः मंदिर से अपनी देवसभा में आकर)

एक देव–देखिये मित्रराज! अब आपको मैं यहाँ की व्यवस्था बता रहा हूँ। हे देवोत्तम! स्वर्ग के ये दिव्य वस्त्र, माला, मुकुट, आभूषण आदि ग्रहण करें

जो हमेशा खिले पुष्प के समान आपके शरीर पर शोभायमान रहेंगे।

शशिप्रभ देव—धन्यवाद देव साथी! मैं आपके स्नेह का आभारी हूँ। हम और आप सभी मिलकर यहाँ पर स्वर्गसुख का उपभोग करते हुए धर्माराधना करेंगे। क्योंकि धर्म से बढ़कर संसार में कोई वस्तु नहीं है।

(देवियाँ आगे बढ़कर देव को नमस्कार कर वहीं खड़ी हो जाती हैं)

शशिप्रभ देव—(हाथ जोड़कर) हे प्रभो! जिस जिनधर्म के प्रभाव से मुझे यह सब लक्ष्मी प्राप्त हुई है, वह जिनधर्म सदा जयवन्त रहे।

—तृतीय दृश्य—

निर्देशक—(स्वर्ग के दिव्य सुखों को भोगते हुए कभी वह देव सुदर्शन मेरु पर जाकर सोलह चैत्यालयों की वंदना करता है, कभी वह नन्दीश्वर द्वीप में 52 चैत्यालयों में पूजा करता है, कभी तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों के अवसर पर भक्तिभाव से भाग लेता है, कभी चारणऋद्धिधारी मुनियों की वंदना करके उनके उपदेश सुनता है, कभी अपने सच्चे गुरु अरविंद मुनिराज की पूजा करता है। कभी मध्यलोक में आकर सम्मेदशिखर की वंदना करके असीम पुण्य संचित कर लेता है और कभी अपनी देवांगनाओं के साथ क्रीड़ा भवन में क्रीड़ा करता है)

(यहाँ देव को सम्मेदशिखर आदि तीर्थों की वंदना करते हुए दिखावें)

—चतुर्थ दृश्य—

(अब शशिप्रभ देव की देवायु के छह माह शेष रह गए अतः वह अपनी आयु का अन्त समय समझकर धर्माराधना में विशेषरूप से लीन रहने लगा)

शशिप्रभ देव—ओह! मेरी आयु का अन्त समय आ गया है। अब मुझे शीघ्र ही जिनधर्म की आराधना में विशेषरूप से तत्पर हो जाना चाहिए।

देवसाथी—प्रभो! आपका विचार अति उत्तम है। इस संसार में जो जीव जन्म लेता है उसका मरण अवश्यंभावी है। बस, आवश्यकता इतनी है कि अंत समय में हमारा हर क्षण जिनेन्द्रदेव की आराधना में लगा रहे।

शशिप्रभ देव—चलें मित्रवर! चलकर नन्दीश्वर, सुमेरु आदि जिनालयों की वंदना करते हैं।

देवसाथी—चलिए देवोत्तम! चलते हैं।

निर्देशक—(शशिप्रभ देव अपने देव साथियों के साथ जाकर जिनालयों की वंदना एवं पूजन आदि करते हैं)

(इस प्रकार देखते-देखते छह माह बीतने लगे। जब आयु का अंत समय नजदीक आया तो वे चैत्यवृक्ष के नीचे पद्मासन मुद्रा में बैठ गये)

शशिप्रभ देव—ॐ सिद्धाय नमः, ॐ सिद्धाय नमः, ॐ सिद्धाय नमः।

(इस मंत्र का उच्चारण करते हुए उन्होंने अपने नश्वर शरीर का त्याग कर दिया और समाधि के प्रभाव से जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पुष्कलावती देश के राजा विद्युत्गति से अग्निवेग नाम के पुत्र हुए।)

इधर कुक्कुट सर्प मरकर नरक में चला गया।

(यहाँ नरक के दुःखों का दृश्य भी दिखावें)

भजन

तर्ज-कभी तू.....

चलो वाराणसि चलना है, वहाँ पर उत्सव करना है।
प्रभु पारस के चरणों में, सभी को वन्दन करना है।।
जय पारसनाथ प्रभो, जय पारसनाथ प्रभो-2।।टेक.।।

नागयुगल को एक बार, प्रभु ने महामंत्र सुनाया।
दोनों ने धरणेन्द्र और पद्मावति का पद पाया।।
पद्मावती का पद पाया.....

प्रभु पार्श्व बालयति को, शत वन्दन सब कर लो।
उनकी यादों में वाराणसि में, उत्सव भी कर लो।।
चलो वाराणसि.।।1।।

एक बार वाराणसि में, युवराज पार्श्वप्रभु जी ने।
एक दूत से नगरि अयोध्या, का वर्णन सुन करके।।
हाँ वर्णन सुन करके.....

वृषभेश्वर तीर्थंकर, का वैभव सुन करके।
तत्क्षण वैरागी बनकर, दीक्षा ली जा करके।।
चलो वाराणसि.।।2।।

उन्हीं पार्श्वप्रभु का तृतीय, सहस्राब्दि महोत्सव आया।
गणिनी ज्ञानमती जी का, आशीर्वाद जब पाया।।
आशीर्वाद जब पाया.....

"चन्दनामती" प्रभु से, कुछ सीख ग्रहण कर लें।
जीवन में समता और धैर्य का, पाठ स्वयं पढ़ लें।।
चलो वाराणसि.।।3।।

अग्निवेग विद्याधर (चौथा भव)

–प्रथम दृश्य–

(मंच पर सामूहिक प्रार्थना)

(पुष्कलावती देश के लोकोत्तर नामक नगर का दृश्य है। विद्याधर राजा विद्युत्गति का राजमहल)

(विद्याधर राजा विद्युतगति का दरबार लगा है। महाराज मंत्रीगणों के साथ वार्ता में मग्न हैं। अचानक एक दासी प्रसन्न मुद्रा में राजदरबार में भागती हुई आती है)

दासी–महाराज की जय हो! महाराज की जय हो! बधाई हो महाराज! रानी विद्युन्माला ने पुत्ररत्न को जन्म दिया है।

(महाराज प्रसन्न हो अपने गले का हार उतारकर उसे देते हैं और दासी जयकार करती हुई लौट जाती है)

महाराज–(अपने मंत्रीगणों से) मंत्री महोदय! सारे नगर में खुशियाँ मनाई जायें, आज हम बहुत प्रसन्न हैं। राजकोष खोल दो, कोई भी खाली हाथ न जाने पाए, सबको मुँहमाँगा धन बांटा जाए।

मंत्रीगण–जो आज्ञा महाराज! (सारे राज्य में खुशियाँ मनाई जा रही हैं, सब तरफ उल्लास का वातावरण है)

–दूसरा दृश्य–

(राजा विद्युत्गति एवं रानी विद्युन्माली सिंहासन पर विराजमान हैं, पास में ही बालक अग्निवेग बैठा है, पास में ढ़ेर सारे खिलौने पड़े हैं और दोनों उसे देखकर प्रसन्न हो रहे हैं)

राजा–देवी! वास्तव में हमारा पुत्र उत्तम लक्षणों से युक्त है। देखो तो उसकी चेष्टाएं एवं बालक्रीड़ा। इसकी खिलखिलाहट देखकर मन फूला नहीं समाता।

रानी–हाँ महाराज! इसको देखकर लगता है कि यह कोई होनहार जीव है।

(इस प्रकार माता-पिता के मन को आनन्दित करता हुआ वह अग्निवेग शिशु पहले घुटनों, फिर पैरों के बल चलता हुआ बाल्यावस्था में प्रवेश करता है और जब कभी वह राजदरबार में प्रवेश कर जाता है तो सभी उसे अपनी गोद में लेकर हर्ष विभोर हो उठते हैं)

–तृतीय दृश्य–

राजदरबार का दृश्य

राजा अपने दरबारियों के साथ वार्ता में मग्न हैं तभी बालक अग्निवेग एक दासी के साथ प्रवेश करता है। दासी एक ओर चुपचाप खड़ी हो जाती है और बालक दौड़कर अपने पिता की गोद में चढ़ जाता है।

राजा–(उसे दुलार करते हुए) अरे पुत्र! तू राजदरबार में आ गया। क्या बात है बेटे! आ जा, मेरे कलेजे से लग जा।

मंत्री–महाराज! आपका पुत्र बहुत ही होनहार है और सर्वांगीण सुन्दर है। लाइए महाराज, मैं भी इसे थोड़ा सा दुलार कर लूँ (राजा से लेकर उसे दुलार करते हुए) तभी सेनापति भी अपनी मनोभिलाषा व्यक्त करते हैं)

सेनापति–महाराज! मुझे भी इसे प्यार-दुलार कर अद्भुत आनन्द मिलता है, लाइए मंत्रीराज! मैं भी अपने आनन्द को वृद्धिंगत कर लूँ।

एक अन्य सभासद–हे प्रजापालक! हम सभी को अपने भावी महाराज को खिलाकर अपूर्व प्रसन्नता मिलती है। हम सब इसे प्यार करेंगे।

निर्देशक–(इस प्रकार राजदरबार में सभी उसे हाथों हाथ लेते हैं और विजयार्ध पर्वत के भावी महाराज को अपने अंक में भरकर अतिशायी आनन्द का अनुभव करते हैं। सौम्य प्रकृति का धारक यह शिशु दूज के चन्द्रमा के समान वृद्धिंगत होता हुआ सभी नगर के मन और नेत्रों को हरण कर रहा है)

–चतुर्थ दृश्य–

नगर का दृश्य है। युवा कुमार अग्निवेग रथ पर सवार नगर में भ्रमण कर रहे हैं। नगरवासी उसे देखकर वार्ता करते हैं।

एक पुरवासी–(दूसरे से) देखो भइया! यह अपने राजा का पुत्र कुमार अग्निवेग है।

दूसरा श्रावक–सचमुच! अपने महाराज का प्रतिबिम्ब ही है।

एक श्राविका–कितना सलोना है, कहीं नजर ना लग जाए।

दूसरी श्राविका–हाँ, बड़ी भाग्यवान होगी वह राजकुमारी जिसे यह वरण करेगा।

तीसरा श्रावक–भईया, बहनों! मेरा तो मन ही नहीं भर रहा है, जी करता है एकटक उसे निहारता ही रहूँ।

तीसरी श्राविका–भाई! आखिर हैं तो अपने भावी महाराज! रूप, गुण

आदि सभी में विशेष होंगे ही, हम अपने महाराज की तरह इनकी छत्रछाया में भी सर्वदा प्रसन्न रहेंगे।

निर्देशक—(नगरवासी अपने-अपने विचार में मग्न हैं और कुमार अग्निवेग अपने विचार में, क्योंकि उन्हें सर्वदा जिनेन्द्र भगवान की भक्ति ही भाती है। यूँ तो राजा विद्युत्गति ने उनका युवराज पद पर अभिषेक कर दिया है लेकिन वह नित्य ही जिनभक्ति में अपने को समर्पित कर चुके हैं।)

—पाँचवा दृश्य—

निर्देशक—(युवराज अग्निवेग अपने पिता से राज्य संपदा को प्राप्त कर कुशलतापूर्वक राज्य संचालन करते हुए जीवन यापन कर रहे थे तभी एक दिन वह समाधिगुप्त नामक मुनिराज के दर्शन करते हैं और पंचेन्द्रिय विषयों को विषवत् समझकर उनसे विरत हो जाते हैं)

(जिनमंदिर का दृश्य है। युवराज अग्निवेग जिनेन्द्रदेव की पूजा-आराधना करके उठते हैं तो वहीं उन्हें समाधिगुप्त मुनिराज के दर्शन हो जाते हैं और वे उन्हें नमोस्तु कर धर्मश्रमण हेतु उनके पास बैठ जाते हैं।)

कुमार अग्निवेग—नमोऽस्तु भगवन्! नमोस्तु!

मुनि श्री—सद्धर्मवृद्धिरस्तु!

कुमार अग्निवेग—हे महामुनि! आपका रत्नत्रय कुशल तो है?

मुनि श्री—हाँ वत्स!

कुमार—प्रभो! रत्नत्रय निधि स्वरूप गुरुवर! कृपा कर अपने दिव्य धर्मामृत से हमें अभिसिञ्चत करें।

मुनि श्री—हे भद्र! इस संसार में जिनधर्म और सम्यग्दर्शन के समान और कोई अनमोल निधि नहीं है, वही प्रत्येक प्राणी को संसार समुद्र से पार करने वाला है अतः सदैव उसी का आश्रय लेना चाहिए। यह जीव अनादि काल से इस संसार में परिभ्रमण कर रहा है, बड़े भाग्य से ही उत्तम कुल, उत्तम जाति, उत्तम शरीर और उत्तम बुद्धि मिलती है अतः उसका सदुपयोग करना चाहिए।

कुमार अग्निवेग—(मन में), हे गुरुदेव! आप सच ही कह रहे हैं, इस संसर में कौन अपना, कौन पराया। यह राज्य संपदा, धन-वैभव सब क्षणिक हैं, नश्वर हैं, अविनश्वर सुख तो मोक्ष मे हैं जिसकी प्राप्ति के लिए मुझे सतत प्रयत्न करना होगा। (उन्हें तत्क्षण ही विषय भोगों से वैराग्य हो जाता है) (पुनः मुनिराज से) हे गुरुदेव! कृपा कर मुझे भवदधितारणी जैनेश्वरी दीक्षा

प्रदान कर कृतार्थ करें।

मुनि श्री—तुम्हारा विचार अति उत्तम है, तुम अवश्य ही निकट संसारी हो, शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करोगे।

—छठा दृश्य—

निर्देशक—(इस प्रकार कुमार अग्निवेग पंचेन्द्रिय विषय भोगों को तृणवत् त्यागकर मुनिराज से पंचमहाव्रतों को प्राप्त कर स्वयं में कृतकृत्यता का अनुभव करने लगे और घोरातिघोर तपश्चरण करने लगे। सर्वतोभद्र आदि श्रेष्ठ उपवासों के द्वारा शरीर को क्षीण करते हुए भी वे निजात्मा के अनुभवरूप परमानन्दामृत को पीकर तृप्त हो रहे थे और सदैव शुद्धात्मा का ध्यान किया करते थे। एक दिन वे वन में हिमगिरि पर्वत की गुफा में ध्यान में लीन थे कि भयंकर अजगर सर्प वहाँ आता है और मुनि श्री को देखते ही वह क्रोध से भयंकर होकर उन्हें निगल लेता है)

(वन का दृश्य तथा उसमें पशु-पक्षी आवाज करते दिखावें)

मुनिराज अग्निवेग—(ध्यान मुद्रा में) ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः....।।

(तभी एक भयानक अजगर सर्प आ जाता है)

निर्देशक—(पूर्व जन्म के संस्कार से वह अजगर तेजी से फुक्कारते हुए मुनिराज को निगलना शुरू कर देता है और मुनिराज परम समता भाव से जिनेन्द्र भगवान की भक्ति में लीन होते जाते हैं)

मुनिराज—(मन में) ॐ नमः सिद्धेभ्यः। आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है। जब देह ही मेरा नहीं तो किससे राग, किससे द्वेष, कौन शत्रु-कौन मित्र। परम वीतरागी आत्म तत्त्व का चिंतन ही मोक्ष प्राप्ति में सहायक होगा। ॐ सिद्धाय नमः-2।।

(इस प्रकार आत्म तत्त्व का चिंतवन करते-करते इस नश्वर शरीर से छूटकर वे मुनिराज सोलहवें स्वर्ग के पुष्कर विमान में देव हो जाते हैं)

G G G G G

अच्युत स्वर्ग में विद्युतप्रभ देव (पाँचवां भव)

(मंच पर सामूहिक प्रार्थना)

स्वर्ग का दृश्य—इन्द्र सभा में अप्सरा का नृत्य

—प्रथम दृश्य—

(अच्युत स्वर्ग में इन्द्र सभा लगी हुई है और सभी देवगण आपस में वार्ता कर रहे हैं)

इन्द्र—(अपने अवधिज्ञान से जानकर) अहो! धर्म की कितनी महिमा है जिससे मनुष्य लोक से प्राणी इस स्वर्गलोक में आ जाता है।

एक देव—क्या हुआ इन्द्रराज! अचानक आप धर्म की महिमा का वर्णन क्यों करने लगे? क्या पृथ्वीलोक में कोई विशेष बात हुई है?

इन्द्र—हाँ देव! बात ही कुछ ऐसी है आज मध्यलोक में जम्बूद्वीप की धरती पर जन्म लेकर कुशलतापूर्वक राज्य संचालन कर पुनः जिनदीक्षा धारण कर समाधिमरणपूर्वक शरीर का त्याग करने वाले राजा अग्निवेग का जीव विद्युत्प्रभदेव के रूप में हमारे स्वर्ग में जन्म लेने वाला है।

दूसरा देव—हे पुरन्दर! वैसे तो इस स्वर्ग में अनेक देव जन्म लेते रहते हैं पर कभी तो ऐसी चर्चा आपके मुख से मैंने नहीं सुनी। इस देव में ऐसी क्या बात है जो आप उनका गुणानुवाद कर रहे हैं?

इन्द्राणी—हाँ देव! हमें भी जानने की जिज्ञासा है कि आखिर उन आने वाले देव में ऐसी क्या विशेषता है।

इन्द्र—तो सुनो! मैं तुम सबको बताता हूँ। उसकी विशेषता यह है कि अब से छठे भव में वह देव जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र की बनारस नगरी में तेईसवें तीर्थंकर के रूप में जन्मेगा।

सभी देव मिलकर—जय हो, जय हो, तेईसवें तीर्थंकर भगवान की जय हो। तब तो हम सबको मिलकर उन महान आत्मा के स्वागत हेतु प्रस्थान करना चाहिए।

पहला देव—हाँ, क्यों नहीं! हम सभी उस महापुरुष के स्वागतार्थ चलेंगे।

(सभी जय-जयकार करते हुए प्रस्थान करते हैं)

—द्वितीय दृश्य—

(सोलहवें स्वर्ग के पुष्कर विमान में उपपाद शैय्या सुसज्जित है जिसके ऊपर सोलह वर्षीय देव सोते हुए के समान दिखावें)

(बाजों की ध्वनि हो रही है, पुष्पवृष्टि हो रही है और देवगण जय-जयकार करते हुए नमस्कार की मुद्रा में खड़े हैं)

विद्युतप्रभ देव—(शैय्या पर उठकर बैठते हुए) ॐ नमः सिद्धेभ्यः (णमोकार मंत्र बोलते हैं पुनः) (ऐसा बोलते हुए आश्चर्यचकित होकर) ओह! मैं कहाँ आ गया? कौन हूँ मैं? ये सब जो मेरे चारों ओर खड़े जय-जयकार कर रहे हैं, कौन हैं यह? इतना दिव्य वैभव, इतनी विभूति! कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा?

सभी देवगण—स्वामिन्! हम सबका प्रणाम स्वीकार करें। आप यहाँ सोलहवें स्वर्ग में विद्युतप्रभ देव के रूप में जन्में हैं।

विद्युतप्रभ देव—(सोचने की मुद्रा में) (अवधिज्ञान द्वारा जानकर) ओह! अच्छा-अच्छा। मैं सब समझ गया। सब याद आ गया मुझे। पूर्व जन्म में मैं विद्याधर राजा का पुत्र अग्निवेग था और जिनदीक्षा लेकर घोर तपश्चर्या करके समाधिपूर्वक शरीर त्यागकर यहाँ पहुँचा हूँ।

देवगण—हे देव! आप पुण्यशाली जीव हैं। आपकी जय हो, देव। अब आप मंगल स्नान हेतु प्रस्थान करें और उसके पश्चात् जिनमंदिर के दर्शनार्थ चलें।

विद्युतप्रभ देव—मित्र देव! मैं शीघ्र ही जिनमंदिर एवं जिनपूजा हेतु प्रस्थान करता हूँ।

(स्नान करके उत्तम वस्त्राभूषण धारण कर वे देव तैयार होकर अपने देव साथियों के साथ अपने विमान में स्थित जिनमंदिर में प्रवेश कर भक्तिभाव से जिनप्रतिमाओं की वंदना करते हैं, भक्तिपूर्वक स्तोत्र पाठ करते हैं, अनन्तर जिनबिंबों का अभिषेक-पूजन करते हैं)

(यहाँ जिनमंदिर का दृश्य दिखावें।)

—तृतीय दृश्य—

स्वर्ग का दृश्य है—

एक देव—स्वामिन्! अब आप अपने वैभव का निरीक्षण करें।

विद्युतप्रभ देव—ठीक है। मैं आपके साथ चलता हूँ।

देव—चलिए मित्रवर!

(उसके साथ चले जाते हैं)

(इन देव की अणिमादि आठ ऋद्धियाँ थीं, बाईस सागर प्रमाण आयु थी। 22 हजार वर्ष व्यतीत होने पर मानसिक आहार करते थे, 22 पक्ष बाद श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते थे। तीन हाथ का ऊँचा सुन्दर, सात प्रकार धातु और उपधातु से

रहित दिव्य वैक्रियक शरीर है)

विद्युतप्रभ देव साथी—देवों के साथ अपना वैभव देखते हुए—

देव—प्रभो! यह आपकी देवियाँ हैं। ये अनेकों सुन्दर स्त्रीरूप बना सकती हैं।

विद्युतप्रभ देव—(मन में जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करते हुए) यह सब जिनमहिमा का ही सुफल है जो मुझे इतने दिव्य सुखों की प्राप्ति हुई है।

(देवियाँ स्वामी को नमस्कार कर अपने भवन की ओर प्रस्थान करती हैं और वह देव विद्युतप्रभ देव को उनकी सेना, दिव्य सभा आदि दिखाने हेतु प्रस्थान करते हैं)

—चतुर्थ दृश्य—

(वह विद्युतप्रभ देव स्वर्ग में अपने देव साथियों के साथ मनोरंजन भी करते थे)

एक देव—हे देवोत्तम! सम्पूर्ण नंदनवन अपने सुगंधित कल्पवृक्षों के फूलों से सुरभित हो रहा है, चलिए वहाँ सैर के लिए चलें।

दूसरा—हे देव! वहाँ छोटी-छोटी बावड़ियाँ जो कि हंस और मयूरों के जलयंत्रों से युक्त हैं, चारों तरफ उज्ज्वल जल की बूंदे बरसा रही हैं, चलिए जल क्रीड़ा के लिए चलें।

तीसरा—हे मित्र! चित्रशाला में नाना प्रकार के चित्र अचेतन होकर भी सचेतन देवों को मानों अपने वश में कर लेते हैं। चलिए, वहाँ चलें।

एक देवी—हे स्वामी। मैं आपके मनोरंजन के लिए अपनी विक्रिया से विविध रूप बनाकर आपको प्रसन्न करूँगी।

(इसके साथ ही वे तत्त्वचर्चा भी करते हैं)

—पाँचवा दृश्य—

(विद्युतप्रभ देव अपनी देवियों और अनेक परिकर देवों के साथ बैठे हैं)

(अप्सरा द्वारा देवसभा में नृत्य)

इन्द्र—हे देव! मध्यलोक में जन्म लेने वाले तीर्थंकर भगवान का पंचकल्याणक मनाने का पुण्य हमें प्राप्त होता है जिसके फलस्वरूप हम भी अपनी आत्मा को भगवान बनाने की दिशा में महान पुण्य को प्राप्त कर लेते हैं।

दूसरा देव—हाँ स्वामिन्! देखो ना! जन्म से ही तीन ज्ञान के धारी वे तीर्थंकर 34 अतिशयों से सहित होते हैं।

इन्द्राणी—देवराज! तीर्थंकर शिशु का दर्शन मात्र ही हमारे चतुर्गति का नाश कर देता है।

सभी देव—उन तीर्थंकर भगवान की महिमा अकथनीय है।

(सभी देव-देवियाँ आपस में तीर्थंकर भगवान का गुणानुवाद करते हैं)

एक देव—देवराज! आष्टान्हिक महापर्व आ रहा है। हमें नन्दीश्वर द्वीप में आष्टान्हिक पर्व मनाने हेतु चलना चाहिए।

अच्युतेन्द्र—हाँ देव साथी! आपने अच्छा याद दिलाया। आप वहाँ चलने की तैयारी करें। हम सब वहाँ चलकर बावन जिनमंदिरों में विराजमान जिनप्रतिमाओं का विशेष संगीत नृत्य आदि से महापूजा-अभिषेक करेंगे।

इन्द्र—जो आज्ञा स्वामिन्! (चला जाता है)

(कुछ देर बाद पुनः आकर) हे नाथ! विमान तैयार है, दिव्य पूजन सामग्री आदि सब तैयार हैं। चलिए। जिनवंदना हेतु प्रस्थान करें।

अच्युतेन्द्र—चलो बंधुओं! हम सब चलें और दर्शन-पूजन कर असीम पुण्य का संचय करें। (सभी प्रस्थान करते हैं)

—छठा दृश्य—

(इस प्रकार से वह अच्युतेन्द्र अपना समय सुखपूर्वक व्यतीत कर रहे हैं। धीरे-धीरे करके उनकी 22 सागर की आयु समाप्त होने को आई और जब मात्र 6 माह शेष बचे तो उनके गले में पड़ी हुई कल्पवृक्षों की पुष्पमाला मुरझाने लगी अतः वह समझ गए कि मेरी आयु का अन्तकाल आ गया है।

अच्युतेन्द्र—ओह! मेरी माला तो सूख रही है इसका मतलब कि मेरा अन्तकाल आ रहा है। अतः अब मुझे जिनभक्ति में अपने चित्त को अनुरक्त करना चाहिए।

देवसाथी—प्रभो! आपने उचित विचार किया। यह जिनधर्म ही हमें न सिर्फ दिव्यसुखों को प्रदान करने वाला है अपितु मोक्षसुख को भी प्रदान करने वाला है।

अच्युतेन्द्र—अच्छा देवसाथियों! मैं प्रभु का स्मरण एवं ध्यान प्रारंभ करता हूँ।

(ज्यों-ज्यों छह माह व्यतीत होते हैं त्यों-त्यों वह अच्युतेन्द्र धर्म में और अधिक अनुरक्त होते जाते हैं और अंत में एक वृक्ष के नीचे पद्मासन मुद्रा में ध्यानस्थ हो जाते हैं।

(ध्यान मुद्रा में एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए दिखावें)

विद्युतप्रभ देव—ॐ सिद्धाय नमः-3।

(इस प्रकार मंत्रोच्चारपूर्वक अपने नश्वर शरीर का उन्होंने त्याग कर दिया और जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेह में पद्म देश के अश्वपुर नगर में चक्रवर्ती वज्रनाभि के रूप में जन्म लेते हैं।)

चक्रवर्ती वज्रनाभि (छठा भव)

–प्रथम दृश्य–

(सामूहिक प्रार्थना)

अश्वपुर नगर के राजा वज्रवीर्य की पट्टरानी विजया देवी अपने राजमहल में सुखपूर्वक निद्रा में मग्न हैं, उषाकाल की लालिमा पूर्व दिशा में खिलने वाली है। सखियाँ प्रभाती गा रही हैं और वीणा की मधुर ध्वनि के साथ प्रभु का मधुर गुणस्तवन करते हुए रानी विजयादेवी को निद्रा से जगाने का प्रयास कर रही हैं–

सखियाँ– उठो मात! खिल रही है उषा,
तीर्थ वन्दना स्तवन करो।
श्री जिनगुण स्तवन उचारो,
श्री जिनवर को नमन करो।।

(विजया देवी स्वच्छ चादर को अपने ऊपर से हटाती हैं और महामंत्र का स्मरण करते हुए उठकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके कुछ क्षण ध्यान मुद्रा में बैठ जाती हैं)

विजया देवी–ॐ नमः सिद्धेभ्यः-3।। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

(दोनों हाथों को जोड़कर जिनेन्द्र भगवान को नमन करते हुए स्तुति पढ़ती हैं)

(स्तुति)

जिनने तीन लोक त्रैकालिक, सकल वस्तु को देख लिया।
लोकालोक प्रकाशी ज्ञानी, युगपत् सबको जान लिया।।
राग द्वेष, जर, मरण, भयावह, नहिं जिनका संस्पर्श करें।
अक्षय सुखपद के वे नेता, जग में मंगल सदा करें।।

पुनः प्रसन्न मुद्रा में अपनी सखियों की ओर देखती हैं, तब सखियाँ पूछती हैं–

एक सखी–महारानी जी! आज आप बहुत प्रसन्न दिखाई दे रही हैं, क्या कोई विशेष कारण है?

दूसरी सखी–हाँ माते! आप तो नित्य की भाँति ही आज निद्रा का त्याग कर रही हैं फिर आज इतनी प्रसन्न! हमें भी बताइये उसका कारण।

तीसरी सखी–लगता है रानी माँ ने कोई सुन्दर सा सपना देखा है।

चौथी सखी–हाँ! मुझे भी ऐसा ही लगता है कि आप हमें कोई अच्छी सी खुशखबरी सुनाने वाली हैं।

महारानी जी–हाँ, हाँ सखियों! आज मैं बहुत ही अधिक प्रसन्न हूँ और इसका कारण है कि मैंने आज बहुत सुन्दर-सुन्दर सपने देखे हैं।

पाँचवी सखी–माता! हमें भी बताइये ना कि वे स्वप्न क्या हैं?

महारानी–सखियों! इतना अधीर मत होवो। स्नान आदि से निवृत्त होकर अभी राजसभा में चलूँगी, वहीं महाराज से उन स्वप्नों का फल पूछूँगी तभी तुम सब भी सुन लेना।

(महारानी प्रभातकालीन क्रियाओं से निवृत्त होकर राजसभा में जाती हैं)

–दूसरा दृश्य–

(महारानी अपनी सखियों के साथ राजदरबार में प्रवेश करने को उद्यत हैं)

(राजदरबार का दृश्य)

(महाराज दरबार में अपने सभासदों के साथ आसीन हैं)

–राजनर्तकी द्वारा नृत्य–

द्वारपाल–महाराज की जय हो। महारानी विजया की जय हो।

सावधान! महारानी विजया अपनी सखियों सहित राजदरबार में पधार रही हैं।

(महारानी राजदरबार में प्रवेश करके महाराज वज्रवीर्य नरेन्द्र का यथायोग्य अभिवादन करती हैं)

महारानी–प्रणाम महाराज!

सखियाँ–हम सबका प्रणाम स्वीकार करें प्रजापालक।

महाराज–आइए महारानी आइए, आसन ग्रहण करिये। देवियों, आप लोग भी अपना आसन ग्रहण करें। कहिए महारानी, आज दरबार में किस कारण से आना हुआ?

(यथायोग्य आसन पर बैठ जाती हैं, सखियाँ भी वहीं पास में बैठ जाती हैं तब महारानी कहती हैं)

महारानी–देव! आज रात्रि के पिछले प्रहर में मैंने कुछ सुन्दर स्वप्न देखे हैं, मेरी आन्तरिक प्रसन्नता का यही कारण है। मुझे कौतुक हो रहा है कि इन उत्तम स्वप्नों का क्या फल है? हे आर्य! कृपा कर अपने मुखचन्द्र की वचन किरणों से उनका फल स्पष्ट बताकर मेरे हर्ष समुद्र को वृद्धिंगत कीजिए।"

महाराज–कहिए देवी! उन स्वप्नों को कहिए?

महारानी–स्वामी! पहले स्वप्न में मैंने सुदर्शन मेरु को देखा, पुनः सूर्य

देखा है, पुनः चन्द्रमा देखा है, अनन्तर देवविमान देखा है और बाद में बहुत ही विशाल सुंदर जल से परिपूर्ण भरित सरोवर देखा है, ऐसे ये पाँच स्वप्न देखे हैं।

महाराज—(कुछ क्षण मन में सोचकर) पुनः मुस्कुराते हुए—

प्रिये! तुम अतिशय पुण्यशालिनी हो। ये स्वप्न यह बात स्पष्ट कह रहे हैं कि तुम चक्रवर्ती पुत्ररत्न को जन्म दोगी।

महारानी—(प्रसन्न होकर) महाराज! इतना सुनने मात्र से ही मेरा सारा शरीर रोमांच से पुलकित हो उठा है, ऐसा लगता है कि मैंने साक्षात् चक्रवर्ती पुत्र को प्राप्त कर लिया है।

(अपने प्रश्नों का उत्तर प्राप्त कर महारानी अपनी सखियों सहित वहाँ से प्रस्थान कर देती हैं और धीरे-धीरे करके नव माह व्यतीत हो जाते हैं)

(नव महीने व्यतीत होने के बाद एक दिन सभा में एक दासी पहुँचकर पुत्र के जन्मोत्सव का उत्तम समाचार सुनाती है)

—तृतीय दृश्य—

(राजदरबार का दृश्य, महाराज अपने सभासदों के साथ दरबार में उपस्थित हैं, राजनर्तकी द्वारा नृत्य चल रहा है। तभी एक दासी वहाँ पहुँचकर पुत्र के जन्मोत्सव का उत्तम समाचार सुनाती हैं)

दासी—(दरबार में पहुँचकर महाराज को प्रणाम करते हुए) महाराज की जय हो-2। दासी का प्रणाम स्वीकार करें महाराज! बधाई हो—बधाई हो, महारानी विजया ने पुत्ररत्न को जन्म दिया है प्रभो!

महाराज—(प्रसन्न मुद्रा में) ओह! इस समाचार को सुनकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता है। दासी, तुमने यह सूचना देकर मेरी प्रसन्नता को अत्यधिक वृद्धिंगत कर दिया है, (महामंत्री से) महामंत्री जी! दासी को नाना वस्त्र, आभूषण और धनादि देकर सदा के लिए सुखी बना दीजिए। आज हम बहुत प्रसन्न हैं। सुनिये! पूरे राज्य में खुशियाँ मनाई जाएं, याचकों को मुँहमाँगा धन बांटा जाए, कोई भी याचक खाली हाथ न जाने पाए।

महामंत्री—जो आज्ञा महाराज! हम सबकी भी बधाई स्वीकार करें प्रजापालक।

(पुनः दासी को बहुत धन, वस्त्रादिक दान दिलवाते हैं, दासी महाराज की जयजयकार करती हुई वापस चली जाती है)

(सारे राज्य में खुशियाँ मनाई जा रही हैं, सर्वत्र बाजे बज रहे हैं। राजा ने प्रजा को इतना धन बांटा कि सभी जन तृप्त हो गये, भण्डार खुला है, दातार

खड़े हैं किन्तु अब कोई याचक आ ही नहीं रहा है। मालूम होता है कि चक्रवर्ती वज्रनाभि ने आते ही शहर की दरिद्रता को दूर भगा दिया है। जिनमंदिरों में जिनेन्द्रदेव का पूजा महोत्सव मनाया जा रहा है।)

—चतुर्थ दृश्य—

निर्देशक—(शिशु वज्रनाभि धीरे-धीरे युवावस्था में प्रवेश कर जाते हैं और महाराज वज्रवीर्य उन्हें सब प्रकार से योग्य जान उनका राजतिलक कर देते हैं। वे कुशलतापूर्वक राज्य संचालन कर रहे थे तभी उन्हें सूचना मिलती है कि आयुधशाला में चक्ररत्न पैदा हुआ है।)

महाराजा वज्रनाभि राजसिंहासन पर आरूढ़ हैं तभी सेनापति प्रवेश करते हैं।

सेनापति—प्रणाम महाराज! महाराज! एक शुभ सूचना है, अपनी आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है।

महाराज—(प्रसन्न होकर) यह तो बड़ी प्रसन्नता की बात है सेनापति, चलिए, चलकर चक्ररत्न की पूजा करते हैं।

सेनापति—जैसी आपकी आज्ञा प्रभो!

(महाराज वज्रनाभि ने विधिवत् जिनेन्द्रदेव की पूजा करके चक्ररत्न की पूजा की, पुनः सेनापति को आदेश दिया)

महाराज—(सेनापति से) सेनापति! सेनाओं को सुसज्जित करें, हम दिग्विजय के लिए प्रस्थान करना चाहते हैं।

सेनापति—अच्छी बात है स्वामी।

निर्देशक—(महाराजा वज्रनाभि दिग्विजय के लिए प्रस्थान करते हैं और कुछ काल में छहों खण्ड पृथ्वी को जीतकर पूर्ण विजयश्री का वरण करके वापस नगरी में आ गए। चक्रवर्ती वज्रनाभि के चक्ररत्न के प्रभाव से छह खण्ड के सभी राजा उनकी आज्ञा को सिर से धारण करते हैं, छ्यानवे हजार रानियाँ, नौ निधियाँ, चौदह रत्न आदि दस प्रकार के उनके भोगोपभोग के साधन हैं। विपुल वैभव के धनी चक्रवर्ती महाराज वज्रनाभि इतने वैभव को प्राप्त करके भी धर्म को नहीं भूले हैं प्रत्युत् अधिक-अधिक रूप से प्रतिदिन जिनेन्द्रदेव की पूजन करते हैं। निर्ग्रन्थ गुरुओं को, अन्य-अन्य त्यागियों को आहार आदि दान देते हैं। निरन्तर शील का पालन करते हुए समय-समय पर उपवास भी करते हैं।)

(यहाँ पर महाराज को पूजन आदि करते हुए का दृश्य दिखावें)

–पंचम दृश्य–

निर्देशक–(शहर के बाहर का बगीचा है, जहाँ आज षट्ऋतु के फल-फूल एक साथ उग रहे हैं, सारा उद्यान सुरभित हो रहा है। सर्प, नेवला, हरिण-व्याघ्र आदि वन्य जन्तुगण बड़े प्रेम से एक साथ ही विचरण कर रहे हैं। गाय का बछड़ा शेरनी का दूध पी रहा है। इधर से शिकारी निकले, किन्तु उनके बाण विफल जा रहे हैं और अन्य प्राणी बड़े विश्वास के साथ शिकारियों के सामने ही निर्भीक होकर खड़े हैं। हो भी क्यों नहीं, यह जिनधर्म की महिमा है। आज इस बगीचे में एक महामुनि पधारे हैं जिनके दर्शन के लिए स्वयं चक्रवर्ती महाराज अपने पुरजन-परिजन सहित पधार रहे हैं।)

(चक्रवर्ती महाराज अपने परिवारजनों और पुरजनों से घिरे हुए उद्यान की तरफ बढ़ते ही आ रहे हैं, कुछ दूर एक पवित्र स्फटिक पाषाण की शिला पर एक महामुनि तिष्ठे हैं, चक्रवर्ती महाराज मुनिराज की तीन प्रदक्षिणा देकर उन्हें बार-बार नमस्कार करते हैं)

चक्रवर्ती महाराज–(मुनिराज को नमस्कार कर तीन प्रदक्षिणा लगाते हुए)

स्तुति पढ़ते हैं–सप्तभंगयुत स्याद्वादमय गंगाजगत पवित्र करें।
सबकी पापधूलि को धोकर जग में मंगल नित्य करें।।
विषय वासनारहित निरम्बर सकल परिग्रह त्याग दिया।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया।।
भवसमुद्र में पतितजनों को सच्चे अवलम्बन दाता।
वे गुरुवर मम हृदय विराजो सब जन को मंगलदाता।।

पुनः उन्हें बार-बार नमस्कार कर उनकी पूजन करते हैं और चरणों में नत होकर निकट बैठ जाते हैं और प्रार्थना करते हैं।

सम्राट चक्रवर्ती–प्रभो! हम जैसे संसारी प्राणियों के उद्धार के लिए धर्मोपदेशरूपी अमृत की वर्षा कीजिए।

मुनिराज–हे राजन्! यह चैतन्य आत्मा अनन्त शक्तिमान होते हुए भी अचेतन पुद्गल के वश में हो रहा है।

निर्देशक–(इस प्रकार से गुरु के उपदेश को सुनकर राजा वज्रनाभि पंचेन्द्रियों के विषयों से विरक्त हो गए। उस समय यह साम्राज्य लक्ष्मी और स्त्री पुत्र, मित्रादि सरस पदार्थ नीरस भासने लगे। देखिये वे क्या सोच रहे हैं।)

सम्राट–ओह! मैंने चक्रीपद को प्राप्त करके इतने काल तक इन्द्रिय भोगों

का अनुभव किया है किन्तु आज तक तृप्ति नहीं हुई है। इन भोगों से तृष्णा वृद्धिंगत ही होती है न कि शान्त। अतः इन क्षणिक सुखों का त्यागकर शाश्वत सुख को प्राप्त करने का उद्यम करना चाहिए।

(राजाधिराज सम्राट को तत्क्षण वैराग्य हो जाता है और वे अपने सुयोग्य पुत्र को राज्यभार सौंपकर आप स्वयं दीक्षा लक्ष्मी को स्वीकार कर लेते हैं)

(महाराज अपने पुत्र का राजतिलक कर पुनः मुनिराज के पास आते हैं)

सम्राट–प्रभो! मुझे जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान कर इस संसार समुद्र से पार करने में मेरा अवलम्बन करें।

निर्देशक–(मुनिराज उन्हें दीक्षा प्रदान करते हैं। अब सम्राट ने अतुल छह खंड की विभूति को पुराने तिनके के सदृश छोड़ दिया और निर्ग्रन्थ दिगम्बर महामुनि बन गए)

(शत्रु-मित्र, जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, सुख-दुख, स्तुति-निन्दा, कनक-कांच और महल-मशान में परम समभाव को धारण करने वाले वे वज्रनाभि मुनिराज दुर्द्धर तपश्चरण करते हुए पृथ्वी तल पर विहार कर रहे थे। किसी समय वे एक वन में आतापन योग से विराजमान थे। उन्हें देखते ही क्रूरकर्मा भिल्लराज अत्यन्त कुपित होकर अपने तीक्ष्ण बाणों से उनके शरीर का भेदन करने लगा)

मुनिराज–(ध्यानावस्था में) ॐ नमः सिद्धेभ्यः-3। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

शिवं शुद्ध बुद्धं परम विश्वनाथं, न देवो न बन्धुर्न कर्ता न कर्म।
न अंगं न संगं न स्वेच्छा न कायं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्।।

(तभी एक भील उधर से प्रवेश करता है।)

भिल्लराज–अरे! यहाँ कौन बैठा है, जरा देखूँ तो कोई पशु तो नहीं है, आज शिकार के लिए इधर-उधर नहीं जाना पड़ेगा।

(पास जाकर देखता है)

अरे! यह तो कोई साधु है (तभी उसे जातिस्मरण होते ही पूर्वजन्म की सारी बातें याद आ जाती हैं) ओह! यह तो मेरा पूर्व जन्म का वैरी है, यह तो मेरे भाई मरुभूति का जीव है, इसने मुझे भव-भव में दुख प्रदान किया है। आज तो इससे बदला लेने का अच्छा अवसर है, यह तो ध्यान में लीन है और मेरे पास बाणों की कमी नहीं है, अभी बाणों से इसे भेदता हूँ।

(इतना कहकर उन शांत, गंभीर, ध्यानारूढ़ मुनिराज के ऊपर अत्यन्त कुपित होकर अपने तीक्ष्ण बाणों से उनके शरीर का भेदन करने लगा और जब मुनिराज अविचल रहे तो कहने लगा।)

भिल्लराज—अरे मूढ़! आँखे तो खोल। कैसा है ये, मैंने इसे बाणों से वेध दिया है और यह बिल्कुल शांत बैठा है। देखता हूँ अब क्या करेगा?

निर्देशक—(वह भिल्ल पुनः कायरजनों से असहनीय ऐसा भयंकर उपसर्ग करने लगा किन्तु वे मुनिराज शरीर से पूर्णतया निस्पृह होकर ज्ञानदर्शन स्वरूप अपनी आत्मा का ध्यान कर रहे हैं और उन्हें उपसर्ग के दुःखों का किंचित् भी अनुभव नहीं आ रहा है।)

मुनिराज—मैं आत्म स्वरूपी हूँ, मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ, चिच्चैतन्य स्वरूपी हूँ, पुद्गल से निर्मित इस देह से कैसा मोह। यह तो फूस की तरह पल भर में जल जाने वाला है, लेकिन आत्मा तो अजर-अमर है और इसी आत्मा को सिद्धात्मा बनाना है। सोऽहं, सोऽहं, सोऽहं।

निर्देशक—(इस प्रकार चतुर्विध आराधना के स्मरण में अपने उपयोग को स्थिर करते हुए वे धर्मध्यान में लीन हो जाते हैं और यह आत्मा इस नश्वर शरीर से निकल जाती है और वे मध्यम ग्रैवेयक के मध्यम विमान में श्रेष्ठ अहमिन्द्र हो जाते हैं।)

G G G G G

मध्यम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र (सातवाँ भव)

–मंच पर सामूहिक प्रार्थना का दृश्य–

(मध्यम ग्रैवेयक का दृश्य)

–प्रथम दृश्य–

(अहमिन्द्रों की सभा लगी हुई है सभी अहमिन्द्र आज बहुत प्रसन्न हैं और आपस में चर्चा कर रहे हैं क्योंकि आज उनके यहाँ एक नये इन्द्र का जन्म होने वाला है)

अहमिन्द्र (1)—मध्यम ग्रैवेयक में जन्म लेने वाले मेरे प्रिय मित्रों! आज का दिवस हमारे लिए बहुत ही शुभ है। आज एक अत्यन्त पुण्यशाली आत्मा हमारे मध्य एक नये मित्र के रूप में आने वाली है।

अहमिन्द्र (2)—देवर्षि! आप किस पुण्यशाली आत्मा की बात बता रहे हैं?

अहमिन्द्र (3)—इन्द्रराज! यहाँ तो वही जन्म लेता है जो महान पुण्यशाली होता है और संसार समुद्र से पार होने वाला होता है।

अहमिन्द्र (1)—हाँ, हाँ मित्रगणों! तुम्हारी जिज्ञासा की पुष्टि मैं अभी किए देता हूँ। अभी-अभी कुछ देर पहले ही मध्यलोक में चहुँओर अपनी कीर्तिपताका को फहराने वाले चक्रवर्ती वज्रनाभि मुनिराज एक भील द्वारा किए गए घोर उपसर्ग को सहनकर समाधिपूर्वक शरीर का त्यागकर इस मध्यम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र के रूप में जन्म लेने वाले हैं।

अहमिन्द्र (4)—देवराज! पर यह तो बताइये उनकी विशेषता क्या है?

अहमिन्द्र (1)—उनकी विशेषता यह है कि वह आज से चौथे भव में तीर्थंकर भगवान बनने वाले हैं।

अहमिन्द्र (5)—अच्छा! यह तो बताइए कि वे अहमिन्द्र किस क्षेत्र के तीर्थंकर बनने वाले हैं?

अहमिन्द्र (1)—सुनो देवगणों! वे अहमिन्द्र जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड की वाराणसी नगरी में महाराज अश्वसेन की महारानी वामादेवी की कुक्षि से तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के रूप में अवतरित होंगे।

सभी अहमिन्द्र—(अपने अवधिज्ञान से जानकर) जय हो, जय हो, तीर्थंकर पार्श्वनाथ की जय हो। देवर्षि! चलिए ना, हम भी चलकर उन अहमिन्द्र का अपने इस ग्रैवेयक विमान में स्वागत करें।

अहमिन्द्र—चलो मित्र! मैं भी चलता हूँ।

(इतना कहकर सभी निकल जाते हैं)

–द्वितीय दृश्य–

मध्यम ग्रैवेयक में सुन्दर एवं सुसज्जित शैय्या पर एक सोलह वर्षीय तरुण सो रहे हैं। अचानक जोर-जोर से बाजे-नगाड़े एवं तुरही आदि बजने लगते हैं, पुष्पों की वर्षा एवं मंद-मंद हवा चल रही है कि तभी अनेक अहमिन्द्र वहाँ पर आ जाते हैं।

अहमिन्द्र –(शैय्या पर उठकर बैठ जाते हैं और पंचपरमेष्ठी का स्मरण करते हैं)

ॐ नमः। णमो अरिहंताणं, णमो.....(पुनः आश्चर्यपूर्वक) ओह! यह कौन सा स्थान है? मैं कहाँ आ गया? मैं कौन हूँ? इतनी भव्यता? यह सामने खड़े दिव्य पुरुष कौन हैं? इन्हीं से पूछना पड़ेगा।

एक अहमिन्द्र –प्रणाम अहमिन्द्र देव! ग्रैवेयक विमान में आपका शुभागमन मंगलमय हो। इस विमान में आप अहमिन्द्र के रूप में जन्में हैं।

नये अहमिन्द्र –(कुछ विचारमग्न हो जाते हैं) अच्छा, अच्छा, मैं सब जान गया। अवधिज्ञान के द्वारा मैं अपने पूर्वभव की सारी बातें जान गया हूँ। ओह! सम्यक्त्व के प्रभाव से और जिनमुद्रा को धारण करने के फलस्वरूप ही मैं इस सर्वोत्तम विमान में आया हूँ। जिनधर्म का प्रभाव ही ऐसा है कि तिर्यंच प्राणी भी सम्यग्दर्शन एवं अणुव्रत के प्रभाव से देव बन जाते हैं फिर मैं तो महाव्रती था।

सभी अहमिन्द्र –आइए मित्रवर! जिस धर्म की शरण प्राप्त कर आप महाव्रती से देव बने उसी की शरण में पुनः चलें। उठिये! सर्वप्रथम जिनेन्द्रदेव की पूजन करिए।

नये अहमिन्द्र –चलिए मित्रों! मैं तैयार हूँ।

(अहमिन्द्र देव पूजन के वस्त्र पहनकर तैयार हो जाते हैं और देवों के साथ अकृत्रिम जिनमंदिर में पहुँचकर भगवान का अभिषेक पूजन करते हैं।)

–मंदिर का दृश्य–

अहमिन्द्र मंदिर में प्रवेश करते हैं और–

अहमिन्द्र –ॐ जय, जय, जय, निःसही, निःसही, निःसही, नमोस्तु-नमोस्तु-नमोस्तु। णमो अरिहंताणं.....। पुनः अभिषेक पूजन करते हैं-ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं.....(पुनः सभी अहमिन्द्रों के साथ पूजन का दृश्य दिखावें)

(पूजन के पश्चात् पुनः अपने ग्रैवेयक विमान में आकर तत्त्वचर्चा आदि करते हुए दिव्य सुखों का उपभोग करने लगते हैं)

–तृतीय दृश्य–

निर्देशक –(महान पुण्यात्मा वह अहमिन्द्र वहाँ सत्ताईस सागर की आयु तक दिव्य सुखों का अनुभव करते हैं। दिव्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित, अतिशय देदीप्यमान शरीर के धारी वह अहमिन्द्र सत्ताईस हजार वर्ष व्यतीत होने पर दिव्य मानसिक आहार ग्रहण करते थे। चूँकि वे अहमिन्द्र परक्षेत्र में विहार नहीं करते इसलिए कभी-कभी अपने साथी मित्रों के साथ अपने निवास स्थान के समीपवर्ती उपवन के सरोवर के किनारे की भूमि में क्रीड़ा हेतु जाते थे)

अहमिन्द्र –(अपने साथी मित्रों से) प्रिय मित्रों! आज हमारी इच्छा है कि हम सब क्रीड़ा के लिए चलें।

एक देव –देवर्षि! चलिये ना! हम सब क्रीड़ा के लिए तैयार हैं।

अहमिन्द्र –मगर यह तो बताइए कि स्थान कौन सा चुना जाए?

दूसरा देव –मित्र! अपने निवास के पास जो उपवन में सरोवर है ना, उससे सुन्दर स्थान और कौन सा हो सकता है, वहीं चलते हैं।

अहमिन्द्र –हाँ, हाँ! यह स्थान ठीक रहेगा। हम वहाँ जलक्रीड़ा करेंगे।

सभी देवगण –चलिए मित्रराज! चलते हैं।

(सभी क्रीड़ा हेतु जाते हैं। आमोद-प्रमोद करते हुए जलक्रीड़ा करते हैं और हँसते-बोलते हुए वापस आ जाते हैं। सभी आकर सभा में अपने-अपने स्थान पर बैठकर उन अहमिन्द्र के साथ संभाषण करने में तत्पर हो जाते हैं)

एक इन्द्र –हे अहमिन्द्र! कृपया हमें अहमिन्द्र शब्द का मतलब समझाएं।

अहमिन्द्र –अहमिन्द्र अर्थात् मैं इन्द्र हूँ-मैं इन्द्र हूँ'' इसके अतिरिक्त जहाँ और कोई चिन्तवन, कोई भेद नहीं है वह अहमिन्द्र कहलाते हैं।

दूसरा इन्द्र –हे महाभाग! तत्त्व कितने होते हैं?

नये अहमिन्द्र –सुनो! तत्त्व सात होते हैं-जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष।

तीसरा इन्द्र –कर्मबंध का क्या कारण है देवर्षि?

अहमिन्द्र –कर्मबंध के 5 कारण हैं–मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग।

चौथा इन्द्र –इसमें प्रधान कारण क्या है?

अहमिन्द्र –मिथ्यात्व और कषाय इसमें प्रधान कारण है।

पाँचवां इन्द्र –ऐसा क्यों मित्रवर?

अहमिन्द्र—ऐसा इसलिए, क्योंकि मोहनीय कर्म के दो भेद हैं और वह सब कर्मों में प्रधान है। मोहनीय कर्म के अभाव में संसार परिभ्रमण का चक्र ही रुक जाता है। इन मिथ्यात्व और कषाय के आधीन हुआ संसारी जीव ज्ञानावरणादि सात कर्मों के योग्य पुद्गल स्कंधों को प्रतिसमय ग्रहण करता है।

पहला इन्द्र—प्रभो! पुण्य का उत्कृष्ट फल क्या है?

छठा इन्द्र—और पाप का उत्कृष्ट फल क्या है?

अहमिन्द्र—पाप का उत्कृष्ट फल परिणामों को शान्त नहीं रखने, इन्द्रियों का दमन नहीं करने, निर्दोष चारित्र पालन नहीं करने से तथा हिंसादि पापों के करने से पापी जीवों को प्राप्त होता है। पाप का दुष्फल नरक-निगोद आदि है।

सातवाँ इन्द्र—हे महापुरुष! सिद्ध भगवान का स्वरूप क्या है?

अहमिन्द्र—सिद्ध परमेष्ठी अष्ट कर्मों से रहित और आठ गुणों से सहित होते हैं।

आठवाँ इन्द्र—वे रहते कहाँ हैं?

अहमिन्द्र—वे सिद्धशिला पर विराजमान रहते हैं।

दूसरा इन्द्र—अच्छा! और उनका सुख कैसा है?

अहमिन्द्र—सिद्धों का सुख केवल आत्मा से ही उत्पन्न होता है, बाधारहित है, कर्मों के क्षय से उत्पन्न होता है, परम आल्हाद स्वरूप है, अनुपम और सर्वश्रेष्ठ है।

(इस प्रकार वह अहमिन्द्र सदैव तत्त्वचर्चा में तल्लीन रहते हुए सम्यग्दर्शन की प्रशंसा करते थे और इस प्रकार वे अपनी सत्ताईस सागर की आयु पूरी कर लेते हैं और आयु के अंत में बारह भावनाओं का चिन्तवन करते हुए अपना समय धर्मध्यान में लगाते हैं।

और-अहमिन्द्र—ॐ सिद्धाय नमः.....(इस प्रकार अपने दिव्य वैक्रियिक शरीर का त्यागकर अयोध्यापति राजा वज्रबाहु की रानी प्रभाकरी से आनन्द कुमार के रूप में जन्म लेते हैं)

G G G G G

राजा आनन्द (आठवाँ भव)

–मंच पर सामूहिक प्रार्थना का दृश्य–

–प्रथम दृश्य–

राजदरबार का दृश्य—राजनर्तकी द्वारा नृत्य

निर्देशक—(अयोध्या नगरी के राजा वज्रबाहु अपने राजदरबार में बैठे हैं। ऐसा लगता है मानों वे आज किसी शुभ सूचना का इंतजार कर रहे हैं। जी हाँ! आज उनकी प्रिय रानी प्रभाकरी प्रसूतिगृह में हैं और भावी पुत्र के शुभागमन की प्रतीक्षा में महाराज अति व्याकुल हैं। अचानक महाराज उठकर टहलते हुए मंत्री से वार्तालाप करने लगते हैं)

राजा वज्रबाहु—मंत्री महोदय! अभी तक कोई समाचार नहीं आया, हम अपने पुत्र का मुख देखने को अति व्याकुल हैं।

मंत्री—महाराज, धीरज रखिये। आपके साथ-साथ हम और सारी प्रजा भी अपने भावी राजा की प्रतीक्षा में आकुलित है आइए, अन्तःपुर की ओर चलें।

तभी अचानक एक दासी का प्रवेश–

दासी—(प्रसन्न मुद्रा में) बधाई हो प्रजापति! बधाई हो। रानी प्रभाकरी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया है। पुत्र का मुखमण्डल ऐसा चमक रहा है मानो कोई दिव्यात्मा हो।

राजा—(इनाम स्वरूप अपने गले का हार देते हुए) लो दासी। इस शुभ सूचना को सुनाकर तुमने मुझे ही नहीं समस्त प्रजा को भी हर्षित किया है। यह लो अपना पुरस्कार।

दासी—महाराज की जय हो, महाराज सदा जयशील रहें, आपकी कीर्तिपताका सदैव फहराती रहे। (प्रणाम कर चली जाती है।)

मंत्री—स्वामिन्! अब मुझे भी प्रस्थान की आज्ञा दीजिए ताकि मैं भी सारी प्रजा को यह शुभ समाचार सुनाकर खुशियाँ मना सकूँ।

राजा—आज्ञा है मंत्रिवर! मैं भी अपने पुत्र का मुखावलोकन करने हेतु अन्तःपुर की ओर प्रस्थान करता हूँ। (राजा एवं मंत्री दोनों अलग-अलग दिशाओं में चले जाते हैं)

निर्देशक—(राजा अन्तःपुर जाकर पुत्र का मुखावलोकन करते हैं और अपने आनन्द को वृद्धिंगत करने वाले पुत्र का 'आनन्द कुमार' नामकरण करते हैं। इधर राज्य में सर्वत्र खुशियाँ मनाई जा रही हैं, सब तरफ उल्लास का वातावरण है)

–द्वितीय दृश्य–

निर्देशक–(कुमार आनंद अपने माता-पिता एवं कुटुम्बीजनों के आनन्द को वृद्धिंगत करते हुए धीरे-धीरे कुमारावस्था को पारकर युवावस्था में प्रवेशकर जाते हैं और सभी विद्याओं और कलाओं में पूर्ण निष्णात हो जाते हैं। महाराज वज्रबाहु उन्हें पूर्णरूपेण राज्यसंचालन में निपुण जानकर अपनी संपूर्ण राज्यलक्ष्मी को उन्हें सौंपने को उद्यत होते हैं और द्वारपाल से कहकर कुमार को बुलवाते हैं

राजदरबार का दृश्य– मंत्रीगण राजा के साथ बैठे हैं।

युवराज आनन्द–(राजदरबार में प्रवेश कर) प्रणाम पिताश्री! आपने मुझे याद किया। कहिए, मेरे लिए क्या आज्ञा है?

राजा वज्रबाहु–हाँ पुत्र! आज मैंने तुम्हें एक विशेष कार्य हेतु बुलवाया है।

युवराज–आज्ञा करें पिताश्री!

राजा–(सिंहासन से उठकर पुत्र के समीप जाकर स्नेह से मस्तक पर हाथ फेरते हुए) बेटा! अब तुम पूर्णरूपेण राज्य संचालन के योग्य हो चुके हो अतः मैं इस राज्यलक्ष्मी को तुम्हें सौंपकर अब निश्चिन्त होकर धर्मध्यान में अपना मन लगाना चाहता हूँ।

युवराज–परन्तु पिताश्री! मैं.....

राजा–(बीच में ही) नहीं पुत्र! यह हमारी कुलपरम्परा रही है कि पुत्र के राज्यसंचालन में योग्य होने पर राजगद्दी उसे सौंपकर पिता जिनेन्द्रभक्ति में तत्पर हो अपना जीवन सफल करते हैं।

मंत्रीगण–परन्तु हे महाराज! आपकी रिक्तता, आपका विछोह, हम कैसे सहन कर पाएंगे।

युवराज–हाँ पिताश्री! कैसे रहेंगे हम आपके बिना?

राजा–अरे पुत्र! इतने समझदार होकर यह कैसी बातें कर रहे हो। वत्स! इस संसार में प्राणी अकेला ही आता है और अकेला ही जाता है। देखो! मृत्यु का कोई भरोसा नहीं, मात्र अपने साथ एक जिनधर्म ही जाना है और आगे तुमको भी तो उसी परम्परा का निर्वाह करना है। (मंत्रियों से) मंत्रीगणों! शीघ्र ही युवराज के राज्याभिषेक की तैयारी करो।

मंत्रीगण–जो आज्ञा महाराज! (महाराज शीघ्र ही युवराज का राज्याभिषेक कर देते हैं और युवराज आनंद महाराज के रूप में कुशलतापूर्वक राज्य संचालन करने लगते हैं)

–तृतीय दृश्य–

(अयोध्यापति आनन्द कुमार महाराज की राज्यसभा। राज्यसभा में महामंडलीक पद को विभूषित करते हुए महाराज आनन्द कुमार रत्नखचित सिंहासन पर आरूढ़ हैं। वारांगनाएं चंवर ढोर रही हैं। आनन्द महाराज का विशाल वैभव है, आठ हजार मुकुटबद्ध राजा उनकी आज्ञा में हैं, चारों दिशाओं में महाराज के गुणों की उज्जवल कीर्ति व्याप्त हो रही है)

–राजसभा में राजनर्तकी का नृत्य–

पुनः समय पाकर स्वामिहित नामक विवेकशील मंत्री कहता है–

मंत्री–महाराज! इस समय ऋतुओं का राजा बसंत आ गया है। सर्वत्र सभी जन कुछ न कुछ महोत्सव कर रहे हैं।

महाराज–बताइए मंत्रिवर! हमें क्या करना चाहिए?

मंत्री–महाराज! अभी फाल्गुन सुदी अष्टमी से पूर्णिमा पर्यंत आष्टान्हिक महापर्व आ रहा है। इस अवसर में नंदीश्वर व्रत किया जाता है और महामहिम पूजा का अनुष्ठान भी होता है। हे प्रभो! जिनेन्द्र देव की पूजा सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाली है पुनः पर्व के संयोग से वह पूजा अतिशय पुण्य को प्रदान करने वाली हो जाया करती है। जिनपूजा के समान इस जगत में और कोई उत्तम कार्य न हुआ है और न हो सकता है। जिनेन्द्रदेव की पूजा की भावना ही सभी दुःखों को दूर करने का एक अमोघ उपाय है।

महाराज–ठीक है मंत्रिवर! शीघ्र ही नंदीश्वर पूजा का भव्य आयोजन कीजिए और यह विशेष ध्यान रखिएगा कि इस विधान कार्य में जितने भी लोग बैठना चाहें उन सबकी उचित और अच्छी व्यवस्था हो।

मंत्री–जैसी आज्ञा महाराज।

निर्देशक–(शीघ्र ही मंत्रीवर वहाँ से निकल जाते हैं और अतुल वैभव के साथ नंदीश्वर पूजन का आयोजन करते हैं। उस विधान कार्य में अगणित लोगों ने भाग लिया। उस पूजा को देखने के लिए वहाँ पर विपुलमति नाम के मुनिराज पधारे। तब महाराज आनन्द उनके दर्शनार्थ जाते हैं और दिव्य उपदेश के साथ-साथ अपनी शंका का समाधान भी करते हैं)

राजा–नमोस्तु मुनिवर!

मुनिराज–सद्धर्मवृद्धिरस्तु।

राजा—प्रभो! आपका रत्नत्रय कुशल तो है?

मुनिराज—हाँ राजन्! मेरे रत्नत्रय की कुशलता है।

राजा—स्वामिन्! कृपा कर अपने धर्मामृत वचनों से हमें अभिसिंचित कीजिए।

मुनिराज—आयुष्मन्! सुनो! इस संसार में जिनपूजा के समान और कोई उत्तम कार्य न हुआ है और न हो सकता है। जिनेन्द्र भगवान की पूजा सम्पूर्ण मनोरथों को सिद्ध करने वाली है और सर्वदा कल्याणकारी है।

राजा—भगवन्! मुझे कुछ संशय हो रहा है सो कृपया आप उसका निवारण कीजिए?

मुनिराज—अवश्य राजन्! कहिए, क्या शंका है?

राजा—गुरुदेव! ये जिनेन्द्रदेव की प्रतिमाएं तो धातु-पाषाण आदि से निर्मित हैं अतः अचेतन हैं पुनः पूजन करने वाले सचेतन को ये पुण्य फल कैसे प्रदान कर सकती हैं?

मुनिराज—राजन्! आपने समयोचित प्रश्न किया है। सुनिये! यद्यपि ये जिनप्रतिमाएं अचेतन हैं और जिनेन्द्र मंदिर भी अचेतन हैं तथापि वे भव्य जीवों के लिए पुण्य बंध के ही कारण हैं। यथार्थ में पुण्य बंध परिणामों से होता है। जिनेन्द्र भगवान रागादि दोषों से रहित शस्त्र, वस्त्र, स्त्री, पुत्रादि से रहित हैं। उनके मुख की वीतराग सौम्य छवि परिणामों की उज्जवलता में कारण है। जिनमंदिर और उनकी प्रतिमाओं के दर्शन करने वालों के परिणामों में जितनी निर्मलता और प्रकर्षता होती है वैसी अन्य कारणों से नहीं हो सकती है।

राजा—परन्तु प्रभो! इनमें किसी का भला-बुरा करने की शक्ति कहाँ है?

मुनिराज—देखो! जैसे कल्पवृक्ष, चिंतामणि आदि अचेतन होते हुए भी मनवांछित और मन चिंतित फल देने में समर्थ हैं वैसे ही जिनप्रतिमाएं भी सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ हैं। प्रतिमारूप में वीतराग मुद्रा को देखकर जिनेन्द्रदेव का स्मरण होता है जिससे अनन्तगुणा पुण्यबंध हो जाता है। जैसे मणि, मंत्र, औषधि आदि अचेतन पदार्थ भी विष अथवा रोगादि को नष्ट करते हुए देखे जाते हैं वैसेही जिनबिंब का दर्शन और पूजन भी समस्त पाप को भस्मसात् करने वाला है।

राजा—फिर तो इनकी निंदा करने वाला महापाप का बंध करता होगा?

मुनिराज—जो मूढ़जन जिनप्रतिमाओं का दर्शन नहीं करते हैं या उनकी निंदा करते हैं वे स्वयमेव अनंत संसार सागर में डूब जाते हैं जैसे कि राजा की मुद्रा आदि का अपमान करने पर मनुष्य राजद्रोही माना जाता है और राजा द्वारा

दण्ड को प्राप्त होता है वैसे ही जिनमुद्रा से अंकित मूर्तियाँ साक्षात् जिनेन्द्र भगवान के सदृश पूज्य मानी जाती हैं उनका अपमान करने वाला व्यक्ति धर्मद्रोही, आत्मद्रोही होता हुआ कर्म की मार से अनन्त दुखों को प्राप्त करता है।

निर्देशक—(इस प्रकार मुनिराज ने राजा को जिनप्रतिमाओं के दर्शन का फल बतलाते हुए उनके सामने तीन लोक के अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन किया, जिसमें सर्वप्रथम वे सूर्य के विमान में स्थित जिनमंदिर का वर्णन करने लगे।

महामुनि—हे राजन्! सूर्य का विमान 48/61 योजन का है यह पृथ्वीतल से 32 लाख मील ऊँचाई पर है। इसमें बारह हजार किरणे हैं जो कि अति उग्र और उष्ण हैं। यह विमान अर्धगोलक के सदृश है।

राजा—प्रभो! इनका स्वरूप कृपया विस्तार से बताइए?

मुनिराज—इस सूर्य के विमान को आभियोग्य जाति के सोलह हजार देव सतत खींचते रहते हैं। यह पृथ्वीकायिक चमकीली धातु से बना हुआ है जो कि अकृत्रिम है। इस सूर्य बिम्ब में स्थित पृथ्वीकायिक जीवों के आतप नामकर्मका उदय होने से उसकी किरणें चमकती हैं तथा उसके मूल में उष्णता न होकर किरणों में ही उष्णता होती है। आकाश में सूर्य की 184 गलियाँ हैं। इनमें से सूर्य क्रमशः एक-एक गली में संचार करते हैं चूँकि जम्बूद्वीप में 2 सूर्य और 2 चंद्रमा होते हैं।

राजा—महामुनिराज! सूर्य की गति क्या है?

मुनिराज—एक मिनट में सूर्य की गति लगभग चवालीस लाख छियत्तर हजार तेईस मील प्रमाण है।

राजा—प्रभो! यह सूर्य विमान हमें दिखाई तो देते नहीं हैं?

मुनिराज—राजन्! सूर्य विमान में नीचे का गोल भाग तो हम आपको दिख रहा है तथा ऊपर के समतल भाग में चारों तरफ गोल तटवेदी हैं जिसमें रत्नमय दिव्यकूट हैं उसमें अष्टमंगल द्रव्य, वंदनमाला, चंवर, घंटिका आदि से सहित जिनभवन हैं, जिनमें 108-108 जिनप्रतिमाएं विराजमान हैं, ये हमें नहीं दिखाई देते हैं।

राजा—वहाँ इनकी पूजा कौन करता है?

मुनिराज—वहाँ सभी देवगण गाढ़ भक्ति से अष्टद्रव्य से नित्य ही उनकी पूजा करते रहते हैं।

राजा—प्रभो! इनकी पूजन का क्या फल है?

मुनिराज—जो भव्यजीव इन जिनप्रतिमाओं की भक्तिभाव से पूजा करते हैं, नमस्कार करते हैं वे संसार के समस्त अभ्युदयों को भोगकर परम्परा से निर्वाणसुख को अवश्य ही प्राप्त कर लेते हैं।

राजा—इनमें सूर्यभवन कहाँ बने हुए हैं?

मुनिराज—इन जिनभवन के चारों ओर समचतुष्कोण, लम्बे और नाना प्रकार के सुंदर-सुंदर सूर्य देव के भवन बने हुए हैं। कितने ही भवन मरकतवर्ण के, कितने ही कुंद पुष्प के और कितने ही सुवर्ण सदृश बने हुए हैं, जिनमें सिंहासन पर सूर्यदेव विराजमान होते हैं।

निर्देशक—(इसी प्रकार से मुनिराज ने बहुत ही विस्तृत उपदेश दिया। सूर्य विमान के जिनमंदिर की असाधारण विभूति को सुनकर आनंद महाराज को बहुत ही श्रद्धा हो गई। वह राजा उस समय प्रतिदिन दोनों समय हाथ जोड़कर, मुकुट झुकाकर जिनप्रतिमाओं की स्तुति करने लगा और उन्हें अर्घ्य चढ़ाने लगा। इतना ही नहीं, उसने कारीगरों के द्वारा मणि और सुवर्ण का एक सूर्य विमान भी बनवाया और उसमें कांति से चकाचौंधयुक्त सुन्दर जिनमंदिर बनवाया, उसमें रत्नों की जिनप्रतिमाएं विराजमान कराईंपुनः उसने शास्त्रोक्त विधि से भक्तिपूर्वक आष्टान्हिक पूजा की और सर्वतोभद्र, कल्पद्रुम आदि महापूजाएं कीं)

—चतुर्थ दृश्य—

निर्देशक—(याचकों को मुंहमांगा दान बाँटा जा रहा है, सर्वत्र राजा आनन्द की जयजयकार हो रही है और नाना चर्चाएं चल रही हैं)

एक—अरे भईया! बड़ा सामान ले रखा है, सुन्दर कपड़े, गहने, भोजन आदि, क्या कोई खजाना हाथ लग गया?

दूसरा—भाई! खजाना ही समझ लो, अपने राजाधिराज आनन्द ने सर्वतोभद्र, कल्पद्रुम आदि महापूजाएँ की हैं और किमिच्छक दान बांटा है, जाओ भाई, तुमको भी जो इच्छा हो ले लो।

तीसरा—अच्छा भइया! फिर तो हम भी चलते हैं।

दूसरा—और सुनोगे, क्या किया है महाराज ने?

पहला—क्या किया है भईया, जल्दी बताओ।

दूसरा—महाराज ने जब नंदीश्वर पूजा का आयोजन किया, तब वहाँ विपुलमति नाम के मुनिराज पधारे और उन्होंने महाराज को सूर्यविमान के जिनमंदिरों की असाधारण विभूति के बारे में बताया, जिसे सुनकर महाराज ने सोने का सुन्दर सूर्यविमान बनवाकर उसमें जिनमंदिर बनवाया है और उसमें रत्नप्रतिमाएँ विराजमान की हैं।

तीसरा—चलो भाई, चलकर उनके दर्शन भी करें। (वहाँ के दर्शन करते हैं)

दूसरा—देखा भइया! क्या दिव्य प्रतिमाएँ हैं, मैं तो इनकी नित्यप्रति पूजा करूँगा।

पहला—हाँ, आज से मैं भी सूर्य पूजा करूँगा।

दूसरा—भइया! तुम ही क्या, हम सब सूर्य पूजा करेंगे, जब अपने महाराज ने इतना सुन्दर मंदिर बनवाया है, तो आज से प्रतिदिन हम सूर्य पूजा करेंगे।

(इस प्रकार उन आनंद महाराज को सूर्य की पूजा करते देख उनकी प्रामाणिकता से देखा-देखी अन्य लोग भी स्वयं भक्तिपूर्वक सूर्यमण्डल की स्तुति करने लगे। आचार्य कहते हैं कि इस लोक में उसी समय से सूर्य की उपासना चल पड़ी है।)

—पंचम दृश्य—

(इस तरह आनंद नरेश बहुत काल तक धर्माराधन, जिनपूजन, दान आदि करते हुए सुख से प्रजा का पालन कर रहे हैं। आनंद नरेश देवेन्द्र के समान अपने महल में स्थित हैं। एक समय वह राज्यसभा में जाने के लिए तैयार हुए तभी दर्पण में मुख देखते ही उन्हें मस्तक पर एक धवल केश दिखाई दिया। राजा का मन कंपायमान हो उठा, तत्काल वे भोगों से और विशाल राज्यवैभव से उदास हो गए)

आनंद राजा—(सोच में) ओह! यह क्या! श्वेत केश! (एकदम कांप उठते हैं) बाल्य अवस्था व्यतीत हो गई, तरुणाई आ गई और अब वह भी विदा मांग रही है, जरा देवी ने अब मेरे इस शरीररूपी घर में प्रवेश कर लिया है। इस प्रकार से मरण समय नजदीक आ रहा है, वह देवी इस बात का सूचना पत्र लेकर ही आई है। बड़े दुःख की बात है कि मैंने इतना अमूल्य जीवन घर में व्यतीत कर दिया।

(उन्हें वैराग्य होते ही उनका मोहकर्म एकदम मंद हो गया और उन्होंने अपने मंत्रियों को शीघ्र ही बुला भेजा)

मंत्री—(अंदर आकर) प्रणाम महाराज! आपने मुझे याद किया?

राजा—हाँ मंत्रिवर! मैंने बहुत काल तक राज्यलक्ष्मी का उपभोग किया और अब मुझे उससे उदासीनता हो गई है अतः मैं इसका त्याग करना चाहता हूँ।

दूसरे मंत्री—किन्तु महाराज! आपके बिना यह राज्यवैभव सब सूना है। हम सब अनाथ हो जाएंगे प्रभो!

राजा—देखो! बालक देह कोंपल है, यौवन में वह पत्ते रूप हो जाता है, वृद्धावस्था पके हुए पीले पत्ते के सदृश है, जो कि कालरूपी हवा के झकोरे से गिर जाता है। कोई जीव गर्भ में ही मर जाते हैं, कोई बाल्यावस्था धारण कर चले जाते हैं, कोई यौवन में नरकाया से वंचित रह जाते हैं। इस प्रकार से मरण के समय का कुछ भी नियत काल नहीं है। परन्तु यह बात अवश्य ही निश्चित

है कि जो जन्म लेता है वह मरता अवश्य है। भाई! पर्वत से पड़ती हुई नदी के समान क्षण-क्षण में आयु निकलती चली जा रही है। अतः हमें शीघ्र ही आत्महित के कार्य में लग जाना चाहिए।

तीसरे मंत्री—राजन्! किन्तु महाराज.....

महाराज—प्रिय मंत्रियों! मैं अपने बड़े और सुयोग्य पुत्र को राज्यभार सौंप रहा हूँ और फिर जहाँ इतने कुशल मंत्री हों, वहाँ क्या चिन्ता! आप शीघ्र ही राजतिलक की तैयारियाँ करवाइए।

(मंत्रीगण उदास मन से राज्यतिलक की तैयारी करते हैं, हर्ष व विषाद मिश्रित सभा में राजा अपने बड़े पुत्र को राज्यभार सौंप देते हैं और आप स्वयं सागरदत्त मुनिराज के समीप पहुँचकर दीक्षा की याचना करते हैं)

—छठा दृश्य—

(राजा आनंद मुनिराज सागरदत्त के श्रीचरणों में बैठे हैं और प्रार्थना कर रहे हैं)

महाराज आनंद—हे गुरुदेव! मैं अब इस संसार समुद्र से पार होने के लिए चारित्ररूपी जहाज पर बैठना चाहता हूँ, सो आप मेरे कर्णधार होइए और मुझे इस अपार संसार से शीघ्र ही पार पहुँचाइए।

मुनिराज—आपने बड़ा ही उत्तम विचार किया अयोध्या नरेश। इस असार संसार को पार करने के लिए जिनमुद्रा को धारण करना सर्वोत्तम है।

निर्देशक—(तरणतारण महामुनि सागरदत्त ने अनेकों राजाओं के साथ उन महामंडलेश्वर आनन्द नरेश को दिगम्बरी दीक्षा दे दी। जिनमुद्रा को धारण कर आनंद मुनिराज महान आनंद और उत्साह के साथ इन मूलगुणों का पालन करने लगे। शुभ लेश्या के धारक उन मुनिराज ने चारों आराधनाओं की आराधना की थी। गुरु के पादमूल में बैठकर उन्होंने ग्यारह अंग तक श्रुत का अध्ययन किया। अनंतर तीर्थंकर नामकर्म के लिए कारणभूत ऐसी सोलहकारण भावनाओं का चिंतवन किया और सातिशय तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया। तपश्चरण के प्रभाव से उन्हें अनेकों प्रकार की ऋद्धियाँ उत्पन्न हो गईं। वे योगिराज जिस वन में ध्यान लगाते हैं सभी विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं। षट्ऋतु के फल-फूल एक साथ आ जाते हैं, क्रूर पशु जो जात विरोधी हैं प्रेम से मिलकर विचरण करते हैं। महामुनि आनंद महाराज अपनी ही शुद्ध आत्मा के अनुभव से उत्पन्न हुए वीतराग सुखामृत का पान करके तृप्त हो रहे हैं।)

—सप्तम दृश्य—

(एक समय वे मुनिराज क्षीरवन में प्रायोपगमन सन्यास लेकर प्रतिमायोग से ध्यान में लीन हो गए। उसी समय भयंकर गर्जना करता हुआ एक सिंह वहाँ आता है जो कि कमठचर पापी भील का जीव नरकों के भयंकर दुखों को भोगकर आया है। मुनिराज को देखकर उसकी क्रोध कषाय भड़क उठती है और वह दहाड़ मारकर मुनिराज पर धावा बोल देता है।)

(मुनिराज ध्यान में अविचल हैं तभी उधर से एक सिंह निकलता है)

सिंह—(मन में) अरे! मनुष्य, आज तो अच्छा शिकार हाथ लगा (थोड़ा सा आगे बढ़ता है) ओह! यह तो वही दुष्ट है, मेरा जन्म-जन्म का बैरी शत्रु, इसी के कारण मुझे बड़ी यातनाएं सहनी पड़ी हैं और देखो तो कैसा भोला बना बैठा है, अभी डराता हूँ।

(जोर से गर्जना करता है किन्तु मुनिराज ध्यान में लीन हैं, उन पर उस गर्जना का कोई असर नहीं होता है), सिंह पुनः सोचता है—

अच्छा! मेरी भयंकर गर्जना को सुनकर अच्छे-अच्छे कांप जाते हैं, मगर यह तो शांतचित्त है (उसकी क्रोधाग्नि भड़क उठती है और वह दहाड़ मारकर मुनिराज पर धावा बोल देता है और उनके कंठ को पकड़ लेता है)।

मुनिराज—(धर्मध्यान में लीन हो जाते हैं) अरे! यह तो वही मेरा भाई कमठ का जीव है, इस क्रोध कषाय ने इसे कितने भवों तक कष्ट दिया मगर इतना क्रोध। खैर, कोई बात नहीं, मुझे समता भाव का आश्रय लेना है। मैं शुद्ध-बुद्ध-नित्य-निरंजन, परमात्मा हूँ, यह आत्मा शुद्ध स्फटिक सम है, सिद्धशिला पर गमन करने वाली है मुझे शुद्धात्म तत्त्व का चिंतवन करना है। (और वे आत्मचिंतवन में लीन हो जाते हैं।)

निर्देशक—(मुनिराज ध्यान में लीन हैं और वह क्रूर सिंह तीक्ष्ण नखों से मुनिराज के शरीर का विदारण करता है और सारे बदन को छिन्न-भिन्न कर देता है। इस पशुकृत उपसर्ग को वे साधुराज परम शांतभाव से सहन करते हैं। परम धीर-वीर तपोधन दुःसह वेदना को कुछ ना गिनते हुए अपने ज्ञानपुंज स्वरूप, अनंत गुणों के निधान आत्मा के चिंतन में अपना उपयोग लगा देते हैं और उसके प्रभाव से वे इस नश्वर भौतिक मल-मूत्र के पिंडस्वरूप देह को छोड़कर दिव्य वैक्रियक देह को धारण कर आनत स्वर्ग में आनतेन्द्र हो जाते हैं।)

G G G G G

आनतेन्द्र (नवमाँ भव)

–मंच पर सामूहिक प्रार्थना का दृश्य–

(स्वर्ग में इन्द्र का दरबार लगा हुआ है, अप्सरा द्वारा नृत्य चल रहा है। नृत्य के बाद वहाँ आज देवों में कुछ चर्चा चल रही है)

इन्द्र–स्वर्गलोक के मेरे प्रिय देवगणों! आज की सभा में हम आपको एक विशेष जानकारी प्रदान करने जा रहे हैं।

देव–देवराज! कृपया बताइये कि ऐसी कौन सी विशेष जानकारी आप हमें देने वाले हैं।

इन्द्र–मित्रों! आज हमारे आनत नामक स्वर्ग में एक महापुण्यशाली आत्मा देवरूप में जन्म लेने वाली है।

देव–स्वामी! उन पुण्यशाली आत्मा की क्या विशेषता है?

इन्द्र–देवसाथी, उस पुण्यशाली आत्मा के बारे में मैं आपको अवश्य बताऊँगा, वह महान आत्मा जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में शाश्वत जन्मभूमि अयोध्यानगरी के राजा आनन्द के रूप में थी, जिसने सागरदत्त नामक महामुनिराज से जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर सोलहकारण भावनाओं का चिंतवन किया और तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया, वही राजा आनंद अपनी आयु पूर्ण कर समाधिपूर्वक अपने नश्वर शरीर का त्यागकर यहाँ आनतेन्द्र के रूप में जन्म लेने वाले हैं।

इन्द्र–हे इन्द्रराज! यह आनतेन्द्र कौन सी नगरी में कौन से तीर्थंकर के रूप में जन्मेंगे?

इन्द्र–मित्रवर! वह जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में वाराणसी नगरी के राजा अश्वसेन की प्रिय महारानी वामादेवी से तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के रूप में जन्मेंगे।

सभी देव-देवी मिलकर–(खड़े होकर) जय हो, जय हो, तीर्थंकर पार्श्वनाथ की जय हो। वाराणसी नगरी की जय हो। हे इन्द्रराज! अब हमें बताइये कि हम क्या-क्या तैयारी करें, जिससे कि वे देवसाथी सदैव प्रसन्न रहें।

इन्द्र–मित्रों! आप सब आनत नामक विमान को खूब सुसज्जित करें और देखिए उपपाद शैय्या तो ठीक है ना! उसे फूलों से खूब सुसज्जित करिए।

सभी–ठीक है मित्रवर!

(सभी जयजयकार करते हुए निकल जाते हैं)

–दूसरा दृश्य–

निर्देशक–(स्वर्ग में सुन्दर फूलों से सुसज्जित उपपाद शैय्या तैयार है, शैय्या ऊपर चारों ओर से ढ़की हुई है। अन्दर एक सोलहवर्षीय नवयुवक निद्रा में लीन है। बाजे, नगाड़ों की ध्वनि हो रही है, पुष्पों की वर्षा तथा मन्द-मन्द वायुचल रही है, जय-जयकार से दशों दिखाएँ मुखरित हो रही हैं, अनेक देव-देवी हाथ जोड़कर शैय्या के चारों ओर खड़े हैं। तभी वह देव उठकर बैठ जाते हैं।)

आनतेन्द्र–(हाथ जोड़कर णमोकार मंत्र का उच्चारण करते हैं) ॐ नमः सिद्धेभ्यः-3।।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं.....।। ओह! मैं कौन हूँ? मैं यहाँ कहाँ आ गया? मैं इतनी सुन्दरता कहाँ की देख रहा हूँ? कौन हैं ये लोग, इतने सुन्दर और मुझे नमस्कार कर रहे हैं। (पुनः अवधिज्ञान से जानकर) ओह! मैं स्वर्ग में देव हुआ हूँ।

सभी देवगण–हम सभी देवों का प्रणाम स्वीकार करें। स्वर्ग में आपका आगमन मंगलकारी हो। आप तेरहवें स्वर्ग में अच्युतेन्द्र के रूप में जन्मे हैं। प्राणत नामक विमान में जन्म हुआ है आपका।

आनतेन्द्र–ओह! मैं राजा आनन्द की पर्याय में था। मैंने वहाँ कुशलतापूर्वक राज्य संचालन कर वैराग्य हो जाने से दीक्षा ग्रहण कर ली थी और सोलहकारण भावनाओं का चिन्तवन करते हुए समाधिपूर्वक शरीर का त्याग किया था जिससे मैं चौदहवें स्वर्ग में जन्मा हूँ, अब मुझे पुनः उसी धर्म की शरण लेनी है।

एक देव–(समीप जाकर) हे स्वामिन्! आपकी जय हो, आप पुण्यवान हैं। प्रभो! स्नान की सभी सामग्री तैयार है अतः आप शैय्या का त्यागकर मंगल स्नान करें, पुनः जिनेन्द्र भगवान की पूजन करने चलेंगे। इसके बाद अपने वैभव का सर्वेक्षण करने चलें।

(आनतेन्द्र नहा धोकर सुन्दर वस्त्र पहनकर तैयार हो जाते हैं और देवसाथियों के साथ अकृत्रिम जिनमंदिर में पहुँचकर अभिषेक पूजन करते हैं) (यहाँ मंदिर का दृश्य दिखावें) पुनः स्वर्ग में वापस आते हैं–

–तृतीय दृश्य–

एक देव साथी–(आनतेन्द्र को उनका वैभव दिखाते हुए) देखिए मित्रवर! अब मैं आपको यहाँ की सारी व्यवस्था बता रहा हूँ। हे देवोत्तम! स्वर्ग के ये दिव्य वस्त्र, माला, मुकुट आदि ग्रहण करें, जो हमेशा खिले हुए पुष्प के समान

आपके शरीर को सुशोभित करेंगे।

आनतेन्द्र—धन्यवाद देव! आपके इस स्नेह के लिए मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। हम और आप सभी मिलकर यहाँ स्वर्ग के सुखों का उपभोग करते हुए धर्माराधना करेंगे, क्योंकि धर्म से बढ़कर संसार में कोई दूसरी वस्तु नहीं है।

(पुनः कुछ देवियों को उनकी सेवा में प्रस्तुत करते हुए)

देव—हे देवश्रेष्ठ! इस स्वर्ग में यह देवियाँ सदैव आपकी सेवा में तत्पर रहा करेंगी और आपका मनोरंजन करती हुई दिव्य भौतिक सुख प्रदान करेंगी।

(वे देवियाँ आगे बढ़कर आनतेन्द्र के चरण स्पर्श कर कहती हैं)

देवियाँ—हे देव! हमारे लिए क्या आज्ञा है?

आनतेन्द्र—देवियों! आइए हम सब नंदीश्वर द्वीप की वंदना के लिए चलें, वहाँ पूजन के पश्चात् सीमंधर स्वामी के समवसरण में चलेंगे।

एक देवी—नाथ! क्या आप वहाँ के वनों में क्रीड़ा हेतु भी चलेंगे।

आनतेन्द्र—नहीं देवी! सर्वप्रथम जिस धर्म के प्रभाव से मुझे यह सब लक्ष्मी प्राप्त हुई है उस जिनधर्म की आराधना हेतु चलेंगे। (प्रीतिपूर्वक) देखो देवी! यह रूप-सौंदर्य आदि भी आप लोगों को पूर्वजन्म के पुण्य प्रभाव से मिला है।

सभी देवियाँ—चलिए स्वामिन्! हम तैयार हैं।

(आनतेन्द्र देव-देवियों के साथ नंदीश्वर द्वीप की वंदना हेतु जाते हैं और वहाँ पूजन आदि करके सीमंधर स्वामी के समवसरण में चल देते हैं)

—चतुर्थ दृश्य—

(सीमंधर स्वामी का समवसरण है, देव अपनी देवियों के साथ अपने योग्य कोठे की ओर बढ़ते हुए देव-देवियों को वहाँ का वैभव दिखाते हैं)

आनतेन्द्र—देखो मित्रों! देखो देवियों! यह जिनधर्म की ही महिमा है जिसके प्रभाव से मनुष्य तीर्थंकर पद की प्राप्ति कर लेता है।

एक देव—ओह! कैसा अनुपम दृश्य है, चारों ओर मानस्तंभ में जिनप्रतिमाएं विराजमान हैं। सरोवर, वाटिका, बावड़ी, नाट्यशाला, धर्मसभा सब कुछ अद्भुत है।

आनतेन्द्र—देवियों! मित्रों! चलिए, धर्मसभा में अपने योग्य कोठे में बैठकर दिव्यध्वनि का पान करें।

सभी देव-देवी—चलिए प्रभो!

(वह सभी देव-देवियों के साथ समवसरण में स्थित बारह सभा में अपने

योग्य कोठे में बैठ जाते हैं और भगवान की ॐकारमयी दिव्यध्वनि खिरती है जिसे गणधरदेव श्रवण कर विस्तार से बताते हैं)

तीर्थंकर भगवान—इस संसार में धर्म से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है। इस धर्म के द्वारा प्रत्येक प्राणी अपने को मोक्षमहल का स्वामी बना सकता है।

आनतेन्द्र—प्रभो! धर्म का अर्थ क्या है?

भगवान—जो संसार के दुखों से निकालकर उत्तम सुख में पहुँचा दे वही धर्म है।

आनतेन्द्र—त्रैलोक्याधिपति! इस धर्म को पूर्णरूप से कैसे ग्रहण कर सकते हैं।

भगवान—ज्ञानावरण आदि आठ कर्म जो हमें हर क्षण दुख देकर चतुर्गतियों में भ्रमण कराते हैं, उनको पूर्णरूप से नष्ट करके हम इस धर्म को आत्मसात कर परमात्मस्वरूप की प्राप्ति कर सकते हैं।

आनतेन्द्र—भगवन्! क्या हम भी परमात्मा पद प्राप्त कर सकते हैं?

भगवान—भव्यात्मन्! अभी आप देवपर्याय में हैं, जब आप मनुष्य पर्याय की प्राप्ति करेंगे तो पुरुषार्थपूर्वक अपनी आत्मा को परमात्मा बना सकते हैं।

(सीमंधर स्वामी का धर्मोपदेश ग्रहण कर आनतेन्द्र देव-देवियों के साथ स्वर्ग की ओर प्रस्थान करते हैं।)

—पंचम दृश्य—

(स्वर्ग के सुखों को भोगते हुए वह इन्द्र अपना सुखमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनके शरीर में मल-मूत्र, पसीना आदि नहीं हैं, न उनकी पलकें लगती हैं। न नख और केश ही बढ़ते हैं। बुढ़ापा, अकाल मृत्यु और व्याधि वहाँ नहीं है। वह कभी ऋषि, मुनियों के दर्शन का लाभ लेते हैं, कभी नंदन वन में क्रीड़ा करते हैं, तो कभी सभा में बैठकर देव-देवांगनाओं को संतुष्ट करते हुए मनोविनोद करते हैं। कभी-कभी उन्हें धर्म का उपदेश देते हुए कृतार्थ हो जाते हैं। भावी तीर्थंकर वे आनतेन्द्र इस अतुल वैभव को भोगते हुए भी उसमें आसक्त नहीं हैं।

बीस सागर की उनकी आयु है। बीस हजार वर्ष बाद मानसिक अमृतमयी आहार है और 20 पक्ष बीत जाने पर वे उच्छ्वास लेते हैं। साढ़े तीन हाथ का उनका दिव्य शरीर है)

(यहाँ आनतेन्द्र को बाग-बगीचे में घूमते हुए दिखावें, पुनः देवसभा में देवांगना का नृत्य देखकर मनोरंजन करते हुए दिखावें।)

–छठा दृश्य–

(आनतेन्द्र स्वर्ग सुख में निमग्न हैं अचानक उन्हें अवधिज्ञानपूर्वक यह ज्ञात हो जाता है कि अब मेरी आयु के मात्र छः माह शेष बचे हैं।)

आनतेन्द्र–(मन में) ओह! देखते-देखते मेरी बीस सागर की आयु पूरी हो गई और मेरा अन्त समय आ गया। अब मुझे प्रतिक्षण जिनेन्द्र भगवान की भक्ति में तल्लीन हो जाना चाहिए।

(तभी वहाँ देवगण प्रवेश करते हैं और उन्हें विचारमग्न देखकर पूछते हैं)

एक देव साथी–प्रभो! किस चिन्तन में मग्न हैं?

आनतेन्द्र–मित्र! चूँकि मेरी आयु का अन्तकाल नजदीक आ रहा है अतः अब मुझे भगवान की भक्ति में तत्पर हो जाना चाहिए।

दूसरे देव–हे महाभाग! क्या आप हमें छोड़ देंगे?

तीसरे देव–हे स्वामी! हमें आपके बिना धर्म का मार्ग कौन दिखाएगा?

आनतेन्द्र–देखो मित्रों! सच्चे धर्म का मार्ग तो यही है कि इस समय आप विषाद न करें बल्कि मुझे जिनधर्म में और दृढ़ करें। आप ही तो कहते थे कि आप भावी तीर्थंकर हैं फिर अगर मैं मोह में पड़ गया तो क्या होगा? अच्छा तो यही है कि मैं प्रतिक्षण प्रभुभक्ति करूँ।

देवगण–हे महामानव! हे श्रेष्ठवर! हे भावी तीर्थंकर भगवान! आपने हम सभी को उत्तम मार्ग दिखाया है, एक क्षण के लिए तो हम भी आपके मोह में पड़ गए थे, लेकिन संसार में चतुर्गति भ्रमण का कारण यह मोह ही है। जिसने इस पर विजय पाई, वही जिन बन सकता है।

आनतेन्द्र–बिल्कुल ठीक समझे मित्रों! चलिए, अब जिनमंदिर में चलें।

देवगण–चलिए स्वामी! हम सब जिनेन्द्र भगवान की भक्ति के लिए चलें।

(सभी देव-देवी आनतेन्द्र के साथ जिनमंदिर में पहुँचते हैं और भगवान की भक्ति में लीन हो जाते हैं, देखते-देखते छः माह भी व्यतीत हो जाते हैं और आयु का अंत समय जानकर आनतेन्द्र एक रत्नजटित शिला पर बैठकर ध्यान में लीन हो जाते हैं)

आनतेन्द्र–ॐ सिद्धाय नमः.....।।

(इस प्रकार उनकी आयु पूर्ण हो जाती है और वह वाराणसी नगरी में महाराज अश्वसेन की महारानी वामादेवी के पवित्र गर्भ में सीप में मोती के समान अपना स्थान ग्रहण कर लेते हैं।)

भगवान पार्श्वनाथ (दसवाँ भव)

निर्देशक–(वाराणसी नगरी में महाराज अश्वसेन अपने सिंहासन पर स्थित हैं– बंदीगण महाराज के अगणित गुणों का बखान कर रहे हैं तथा समय-समय पर मंत्रीगण राज्य की सुव्यवस्था और प्रजा के सुख वैभव का वर्णन करते हुए महाराज को प्रसन्न कर रहे हैं। इसी बीच सौधर्म स्वर्ग में अपनी सुधर्मा सभा में बैठे सौधर्म इन्द्र ने अपने दिव्य अवधि लोचन से कुछ देखकर पुनः धनपति कुबेर को बुलाकर कहते हैं।

–सौधर्म इन्द्र की सुधर्मा सभा का दृश्य–

–अप्सरा द्वारा नृत्य–

अचानक सौधर्म इन्द्र का आसन कम्पायमान होता है और वे अपने अवधिज्ञान से सब बातें जान जाते हैं–

सौधर्म इन्द्र–ओह! यह क्या! मेरा आसन क्यों कंपायमान हो रहा है। (सोचकर) अरे! वाराणसी नगरी में आज से 15 माह पश्चात् तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ जन्म लेने वाले हैं। आज से नौ माह पश्चात् वे महारानी वामादेवी की पवित्र कुक्षि से अवतरित होंगे। जय हो, जय हो, तीर्थंकर पार्श्वनाथ की जय हो।

(पुनः धनपति कुबेर का स्मरण करते हैं और कुबेर का आगमन होता है।)

धनकुबेर–(प्रवेश कर) प्रणाम इन्द्रराज! आपने मुझे याद किया। कहिए स्वामिन्! क्या आज्ञा है?

सौधर्म इन्द्र–हे धनद! आनन्द नरेश का जीव जो कि यहाँ आनत स्वर्ग में इन्द्रपद के सुखों का उपभोग कर रहा है उसकी आयु छह माह ही शेष रही है, वे तेईसवें अवतार हैं। इसलिए अब शीघ्र ही तुम बनारस नगर में जाओ और त्रिभुवन तिलक के जनक बनने का अतिशय सौभाग्य प्राप्त करने वाले महाराजा अश्वसेन के महल में लगातार 15 माह तक रत्नों की वर्षा करना शुरू कर दो।

धनकुबेर–जो आज्ञा महाराज!

निर्देशक–(इतना कहकर हाथ जोड़कर इन्द्रराज को प्रणाम कर वह वहाँ से वाराणसी नगरी में पहुँचता है और माता वामादेवी के आंगन में अमूल्य रत्नों की वर्षा करना प्रारंभ कर देता है, उस समय ऐसा मालूम होता है कि मानों स्वर्गलोक की लक्ष्मी ही जिनमाता की सेवा के लिए उतरी हो।

राजमहल में रत्नवृष्टि हो रही है यह देखकर जनता आश्चर्यचकित है–

एक व्यक्ति—देखो, देखो, रत्नवृष्टि हो रही है, कैसा अनुपम दृश्य है।

दूसरा—हाँ, वह तो मैं भी देख रहा हूँ, पर इतना तो बताओ कि यह वृष्टि क्यों हो रही है?

पहला—अरे भाई! कमाल है, क्या तुम्हें यह भी नहीं मालूम! अपने महाराज अश्वसेन हैं ना। उनकी रानी वामादेवी से तीर्थंकर प्रभु का जन्म होने वाला है।

दूसरा—क्या कहा? पुत्र जन्म होने वाला है। लेकिन यह जो रत्नवृष्टि कर रहा है, उसे कैसे मालूम हुआ? (धनकुबेर की ओर इशारा कर)

पहला—भईया! तुम्हें नहीं मालूम, यह तो स्वर्ग से ही आए हुए धनकुबेर हैं।

दूसरा—क्या! धनकुबेर! मुझे विस्तार से बताओ भाई।

पहला—सुनो! सौधर्म इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से सब कुछ जानकर धनकुबेर को यहाँ रत्नवृष्टि करने भेजा है।

दूसरा—अच्छा! समझ गया, अपने वाराणसी नगरी में तीर्थंकर भगवान जन्म लेने वाले हैं।

पहला—हाँ, अब से पन्द्रह माह तक लगातार रत्नवृष्टि होगी।

दूसरा—भला, पन्द्रह मास तक क्यों?

पहला—इसलिए क्योंकि आज से छह महीने बाद प्रभु गर्भ में आएंगे और नव महीने बाद जन्म लेंगे।

दूसरा—सचमुच तीर्थंकर प्रभु की महिमा अपार है।

एक अन्य पुरुष—भाइयों! जब जन्म से पहले ही इतना अतिशय है तो जन्म लेने के बाद बड़ा ही आनन्द आएगा।

(तभी एक बहन उधर आती है)

बहन—भाई! देखो तो, आकाश से उत्तम-उत्तम रत्नों की वृष्टि हो रही है। क्या सुन्दर दृश्य है।

तीसरा—हाँ बहन! बड़ा ही मनोरम दृश्य है। चलो, राजमहल में चलकर रत्न लेकर आते हैं। चलो भाईयों! तुम सब भी चलो।

—द्वितीय दृश्य—

(वामा माता राजमहल में माणिक्यजड़ित रत्नयुक्त पलंग पर कोमल शैय्या पर सो रही हैं। रात्रि के अंतिम प्रहर में माता ने जिनजननी के पदभार को ग्रहण

करते हुए उत्तम-उत्तम सोलह स्वप्न देखे। अंत में उन्होंने देखा कि एक उन्नत कंधों वाला बैल मेरे मुख में प्रवेश कर रहा है। ऐसा देखकर एक क्षण तो वह चौंक उठती हैं पुनः प्रसन्नमना हो निद्रा का परित्याग करती हैं।)

महारानी वामादेवी—(उठकर बैठकर) ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ.....। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं (पुनः प्रसन्नमना हो देवियों की तरफ देखती हैं)

पहली देवी—हे माता! आज आप बहुत प्रसन्न दिखाई दे रही हैं, सो क्या कारण है?

दूसरी देवी—हाँ माता! आज आप विशेष प्रसन्न दिखाई दे रही हैं, क्या कोई खास कारण है?

माता—हाँ देवियों! आज मेरी प्रसन्नता का कुछ विशेष ही कारण है।

तीसरी देवी—माता! वह कारण क्या है? हमें भी बताइये।

माता—देवियों! आज रात्रि के अंतिम प्रहर में एक, दो नहीं अपितु पूरे सोलह स्वप्न देखे हैं।

चौथी देवी—माता! जरूर कोई दिव्य स्वप्न देखे होंगे।

पांचवी देवी—महारानी जी! कृपया उन स्वप्नों के बारे में हमें भी बताइये।

छठी देवी—हाँ माता! बताइए ना! वे दिव्य स्वप्न क्या हैं?

माता—देवियों! इतनी अधीर मत होवो। अभी स्नान आदि से निवृत्त होकर राजसभा में चलूँगी, वहीं महाराज से उन स्वप्नों का फल पूछूंगी, तब आप सब भी सुन लेना।

सातवीं देवी—ठीक है माता। (अपनी सखियों से) सखी! माता के स्नान आदि की जल्दी व्यवस्था करो।

आठवीं देवी—बहन! उबटन, गर्म जल आदिक सब तैयार है।

(देवियाँ माता को स्नान करवाकर उन्हें श्रृँगारित करती हैं और महारानी वामादेवी राजसभा में महाराज से उनका फल जानने हेतु प्रस्थान करती हैं।

—तृतीय दृश्य—

(महाराज अश्वसेन राजसिंहासन पर बैठे हैं। महारानी राजदरबार में प्रवेश करती हैं)

द्वारपाल—सावधान! महारानी वामादेवी अपनी सखियों के साथ राजदरबार में पधार रही हैं।

(महारानी महाराज के पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम करती हैं और उनके द्वारा उचित आदर को प्राप्त करके अर्धासन पर बैठ जाती हैं।)

महारानी—हे स्वामिन्! आपको नमस्कार हो।

महाराज—(आसन की ओर इशारा करते हुए) आइए महारानी! अर्धासन ग्रहण करिये, कहिए, आज राजदरबार में किस कारण से आना हुआ?

देवियाँ—प्रणाम पिताश्री!

महाराज—बैठो देवियों!

महारानी—महाराज! आज राजदरबार में मेरे आने का कारण मेरे स्वप्न हैं।

महाराज—कैसे स्वप्न देवी! कहिए वे क्या हैं?

महारानी—महाराज! पहले स्वप्न में मैंने ऐरावत हाथी देखा, दूसरे स्वप्न में शुभ्र बैल को देखा, तीसरे स्वप्न में सिंह, चौथे में कमल पर विराजमान लक्ष्मी, पांचवें स्वप्न में दो फूलमाल, छठवें स्वप्न में उदित होता हुआ सूर्य, सातवें स्वप्न में ताराबलि से वेष्ठित पूर्ण चन्द्रमा, आठवें स्वप्न में जल में तैरती हुई मछलियों का युगल, नवमें स्वप्न में कमल से ढके हुए पूर्ण स्वर्ण कलश को देखा। दसवें स्वप्न में मैंने कमल पुष्पों से भरा सरोवर, ग्यारहवें स्वप्न में चंचल तरंगों से युक्त समुद्र, बारहवें स्वप्न में मणिमय सिंहासन, तेरहवें स्वप्न में देवविमान, चौदहवें स्वप्न में धरणेन्द्र भवन, पन्द्रहवें स्वप्न में रत्नों की राशि और सोलहवें स्वप्न में निर्धूम अग्नि देखी है, इस प्रकार मैंने ये सोलह स्वप्न देखे हैं।

महाराज—उत्तम, अति उत्तम! शुभ स्वप्न हैं प्रिये।

महारानी—महाराज! इन सोलह स्वप्नों को देखने के पश्चात् मैंने देखा कि एक उन्नत कंधों वाला शुभ्र बैल मेरे मुख में प्रवेश कर रहा है।

(महारानी उन स्वप्नों को निवेदन करके उनके फल की जिज्ञासा में प्रत्युत्तर की अपेक्षा करती हैं। उसी समय महाराज अपने अवधिज्ञान के बल से चिंतवन कर एक-एक स्वप्न के फल को पृथक्-पृथक् बतलाते हैं, पुनः कहते हैं—

महाराज—देवी! आपके गर्भ में त्रैलोक्यपती तीर्थंकर का जीव अवतरित हो चुका है, आप जगत्पति पुत्ररत्न को प्राप्त करेंगी, जिसके पुण्यफल के निमित्त से ही तो रुचकपर्वतनिवासनी तथा कुलाचलवासिनी देवियाँ आकर आपकी सेवा कर रही हैं।

निर्देशक—(वामा देवी अपने पतिदेव के मुखचन्द्र के वचनामृत से परम सन्तोष और हर्ष को प्राप्त होती हुई अपनी स्त्रीपर्याय को सार्थक समझती हैं सभी प्रजाजन भी हर्ष से पुलकित हो उठते हैं, सखियाँ भी हर्ष से रोमांचित हो जाती हैं तथा महारानी वामादेवी के साथ हंसी-मनोरंजन करते हुए उन्हें अन्तःपुर में ले जाती हैं।)

(तीर्थंकर के पुण्य के प्रभाव से स्वयं ही देवों के यहाँ आसन कंप आदि के द्वारा सूचना मिल जाने से सौधर्म इन्द्र असंख्य देव परिवारों के साथ आकर गर्भकल्याणक महोत्सव मनाते हैं। श्री, ह्री, धृति आदि देवियाँ माता की सेवा करते हुए उन्हें आनन्दित किया करती हैं और नाना प्रकार के प्रश्नों को करके वामादेवी के मुख से उनका चमत्कारिक उत्तर प्राप्त करके अपने आपको कृतार्थ कर रही हैं)

(गर्भकल्याणक का नृत्य)

—चतुर्थ दृश्य—

निर्देशक—(इस प्रकार गर्भावतार के 9 माह तक लगातार वाराणसी नगरी में विभिन्न उत्सव होते रहे और देखते-देखते नव माह भी पूर्ण हो गए। पौष वदी एकादशी की उत्तम तिथि के दिन सर्वश्रेष्ठ बेला में पूरब दिशा के समान वामादेवी ने त्रिभुवन कमल को विकसित करने वाले अद्भुत सूर्य स्वरूप पुत्र को जन्म दिया। जन्म से ही तीन ज्ञान के धारी उन तीर्थंकर शिशु के जन्म से सभी दिशाएं निर्मल हो उठीं, नरकों में भी क्षणभर के लिए शान्ति छा गई और स्वर्गों से बिना बजाए ही बाजे बजने लगे। इन्द्रों के आसन अपने आप कंपायमान हो उठे और उनके मस्तक के मुकुट स्वयमेव ही झुक गए)

—स्वर्ग का दृश्य—

(स्वर्ग में सौधर्म इन्द्र अपने अवधिज्ञान से तीर्थंकर भगवान का जन्म हुआ जानकर अपने सिंहासन से उतरकर सात पैंड आगे बढ़कर परोक्ष में प्रभु को नमस्कार करते हैं, पुनः आदेश देते हैं—)

सौधर्म इन्द्र—हे देवों! ऐरावत हाथी को खूब सजाकर तैयार करो, हम सब मध्यलोक चलकर तीर्थंकर भगवान का जन्मकल्याणक उत्सव मनाएंगे।

देवगण—जो आज्ञा इन्द्रराज!

(सौधर्म इन्द्र अपने विशाल परिकर के साथ दुन्दुभि बाजे, जयजयकार

आदि से आकाशमंडल को गुंजायमान करते हुए मध्यलोक के आर्यखण्ड की वाराणसी नगरी में पहुँचते हैं और नगरी की तीन प्रदक्षिणा देकर राजदरबार में प्रवेश करते हैं)

देवों का सामूहिक स्वर–तीर्थंकर पार्श्वनाथ की जय हो। वाराणसी नगरी की जय हो। महाराजा अश्वसेन की जय हो। महारानी वामादेवी की जय हो।

सौधर्म इन्द्र–(महाराज अश्वसेन से) हे पूज्य तात! हमें भी प्रभु का जन्मोत्सव मनाने की आज्ञा प्रदान कीजिए।

पिता अश्वसेन–(खुशी से) हाँ-हाँ क्यों नहीं! इन्द्रराज! हमारे लिए इससे बढ़कर प्रसन्नता की और क्या बात होगी। जाइए, प्रभु का जन्मोत्सव मनाइए।

सौधर्म इन्द्र–(शचि इन्द्राणी से) हे शचि! आप शीघ्र ही प्रसूतिगृह में जाकर जिनशिशु का दर्शन करिए और अपनी स्त्रीलिंग को छेदकर अपने इस जन्म को सफल करिए। और हाँ, जल्दी ही जिनशिशु को लेकर आना, मैं भी प्रभु का दर्शन कर अपने नेत्रों को सफल करूँगा और प्रभु को सुमेरु पर्वत पर ले जाकर जन्माभिषेक करूँगा।

(इन्द्राणी तत्काल प्रसूतिगृह में जाकर दिव्य देहधारी पार्श्वकुमार एवं जिनमाता का दर्शन करती हैं और जिनमाता की बार-बार प्रशंसा करते हुए कहती हैं)

इन्द्राणी–हे महादेवी! आप तीनों जगत के स्वामी को उत्पन्न करने के कारण समग्र विश्व की माता हो एवं आप ही महादेवी भी हो। हे माता! संसार में आपकी तुलना की अन्य कोई स्त्री नहीं है।

निर्देशक–(इस प्रकार माता की स्तुति कर इन्द्राणी ने उन्हें मायामयी निद्रा में सुला दिया और जिनशिशु की गोद में उठाकर बार-बार उसका मुख चूमते हुए शरीर से निकलती उज्जवल ज्योति को देखकर वह हर्षित हो उठी पुनः प्रसूतिगृह से बाहर आकर इन्द्र के निवेदन पर जिनशिशु को इन्द्र को सौंप दिया। इन्द्र भगवान की अपूर्व सुन्दरता को देखकर उनकी स्तुति में कहने लगा)

इन्द्रराज–हे देव! आप हमें परम आनन्द प्रदान करने के लिए बाल चंद्रमा की भांति लोक को प्रकाश देने के लिए प्रगट हुए हैं। हे ज्ञानी! आप विश्व के स्वामी हैं, हम आपको प्रणाम करते हैं। (प्रणाम कर उन्हें लेकर झूम-झूमकर नाच उठता है और गाता है)

–स्तुति–

तर्ज– फूलों सा चेहरा तेरा.....

प्यारा सा मुखड़ा मेरे, जिनवर का सुखकार है।
तेज तेरा देख के, रूप तेरा देख के, हर्षित ये नर-नार हैं।।
अश्वसेन पितु का लाडला है, माता वामा का दुलारा है तू।
वाराणसी में जन्मा है देखो, जन-जन की आँखों का तारा है तू।।
इन्द्रगण से सेवित, मुनिगणों से वंदित, सारे जगत में न्यारा है तू।
भव संकटहारी प्रभू की, वाणी भी सुखकार है।
तेज तेरा देख के, रूप तेरा देख के, हर्षित ये नर-नार हैं।।
प्यारा सा मुखड़ा मेरे.....।।1।।

निर्देशक–(पुनः जिनशिशु को गोद में लेकर ऐरावत हाथी पर बैठकर सुमेरु पर्वत की ओर चल पड़े। अनेक देव-देवियाँ चंवर ढुराते जा रहे हैं। ऐसा सुन्दर दृश्य! जो कि पहले किसी ने नहीं देखा।

(इस प्रकार विशाल वैभव के साथ सभी लोग सुमेरु पर्वत की पाण्डुक शिला पर पहुँचकर जिनशिशु को बैठा देते हैं, सभी देवगण ऊपर से नीचे पंक्ति में खड़े हो जाते हैं, सभी के हाथों में बड़े-बड़े कलशों में क्षीरोदधि का प्रासुक जल है। जयजयकार की ध्वनि के साथ क्रमशः 1008 कलशों से अभिषेक सम्पन्न हो गया।)

(पुनः बालक को वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर उनका 'पार्श्वनाथ' ऐसा नामकरण करके वापस बनारस आकर उस बालक को माता-पिता को सौंपकर पुनः वहाँ पर जन्मकल्याणक महोत्सव मनाकर अपने-अपने स्थान को चले जाते हैं। नगरवासी भी जिनशिशु को देखकर मानों तृप्त नहीं हो रहे हैं और पालने में पार्श्वकुमार को झुलाते व गाते हैं।)

पालना गीत–

पलना ये रत्नों वाला, रेशम की डोरी वाला, पलने में झूले वामा लाल
त्रिभुवन भी जिससे है निहाल।
पलने में लाल लटकते, मोती, माणिक हैं, हिलते, उनकी चमक बेमिशाल।
त्रिभुवन भी जिससे है निहाल।।टेक.।।
उसमें विराजे देखो, त्रिभुवनपति अन्तर्यामी।
मुखड़ा सलोना देखो, लीला है कितनी न्यारी।।
हम सब हैं वारी जाते, चरणों में शीश झुकाते, करते हैं तुझको प्रणाम।
त्रिभुवन भी जिससे है निहाल।।1।।

–पंचम दृश्य–

निर्देशक–इन्द्र ने चूँकि तीर्थंकर भगवान के अंगूठे में अमृत को स्थापित कर दिया था, उसी अंगूठे को चूसकर जिनबालक वृद्धि को प्राप्त होते हैं किन्तु वे माता का स्तनपान नहीं करते हैं। इन्द्र की आज्ञा से प्रभु के साथ उन्हीं के अनुरूप वेष धारण कर देवगण क्रीड़ा करते रहते हैं। क्रम-क्रम से वृद्धि को प्राप्त होते हुए तीर्थंकर पार्श्वकुमार जब सोलह वर्ष की अवस्था में प्रवेश कर रहे थे तब पिता अश्वसेन ने अपने कर्तव्य के नाते भगवान पार्श्वनाथ से विवाह करने का प्रस्ताव रखा)

सोलहवर्षीय कुमार पार्श्वनाथ सिंहासन पर विराजमान हैं, अवसर पाकर महाराजा अश्वसेन उनसे कहते हैं–

महाराजा अश्वसेन–प्रिय पुत्र! आज हम आपसे एक विशेष वार्ता करना चाहते हैं।

पार्श्व कुमार–कहिए पिताश्री! क्या बात है?

महाराज–आज्ञा नहीं पुत्र! एक इच्छा है मेरी और तुम्हारी माता वामा देवी की।

कुमार–क्या इच्छा है पिताश्री?

महारानी–बेटे! जब पुत्र युवावस्था में प्रवेश कर जाते हैं तब हर माता-पिता की इच्छा होती है कि वह शीघ्र ही घर में एक प्यारी सी बहू लेकर आवें, घर में पोते-पोतियों की किलकारियाँ गूंजें। इसलिए पुत्र! हम चाहते हैं कि तुम भी हमें विवाह हेतु अपनी स्वीकृति प्रदान करो।

कुमार–माताश्री! पिताश्री! यह संसार तो क्षणभंगुर है, इन क्षणिक सुखों में फंसकर अपने अनमोल मानव जीवन को व्यर्थ गंवाने से क्या लाभ! मैं तो आपका तीर्थंकर पुत्र हूँ, जगत के कल्याण हेतु जन्मा हूँ। मैं विवाह के बंधन में नहीं बंधूगा।

महारानी–किन्तु बेटे! कुछ तीर्थंकरों को छोड़कर सभी ने तो विवाह किया है, फिर तुम क्यों मना करते हो?

पार्श्वकुमार–माता! आखिर बाद में उन्होंने भी उसे छोड़ा है फिर इस छोटी सी उम्र में ऐसा करके व्यर्थ अमूल्य समय को क्यों गवाएँ, इसलिए हे प्यारी माँ! मैंने तो सिद्धिकन्या से विवाह का पूर्ण निर्णय ले लिया है और आपको उसे अपनी बहू बनाने की स्वीकृति प्रदान करनी ही पड़ेगी।

(इस प्रकार तीर्थंकर कुमार पार्श्वनाथ ने माता-पिता के समझाने के लाख प्रयासों के बाद भी इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और बाल ब्रह्मचारी रहे।)

–षष्ठम् दृश्य–

एक समय श्री पार्श्वनाथ बहुत से राजपुत्रों के साथ हाथी पर सवार होकर बनारस के उद्यानों में विचरण कर रहे थे। वहाँ प्रभु ने एक जगह एक तापसी साधु को पंचाग्नि तप करते देखा, जो कि प्रभु पार्श्व के नाना थे, पार्श्वनाथ वहाँ पर अपने नाना को बिना नमस्कार किए खड़े हो गए तब वह तापसी सोचने लगा–

तापसी–(मन में) अहो! मैं इस बालक का नाना हूँ तथा तापसी भी हूँ। फिर भी यह मेरी विनय नहीं कर रहा है।

(और यह सोचते-सोचते अतीव क्रोध में आकर हाथ में कुल्हाड़ी लेकर लकड़ी चीरने लगता है। उसके हाथ में कुल्हाड़ी लेते ही दया के रत्नाकर श्री प्रभु वचनामृत वर्षा को करते हुए हित, मित और प्रिय वचन बोले।)

पार्श्वकुमार–हे तापसी! यह लकड़ी मत काटो, इसमें नागयुगल बैठे हैं।

तापसी–(क्रोधित होकर) अरे! क्या तू ही नारायण, महादेव या ब्रह्मा का अवतार है जो कि सम्पूर्ण चराचर का ज्ञाता बन रहा है? तू कैसे कह रहा है कि इस लकड़ी में सर्पयुगल हैं?

(ऐसा कहते-कहते ही उसने कुल्हाड़ी से लकड़ी के दो टुकड़े कर दिये और तत्क्षण ही उस नागयुगल के दो टुकड़े हो गए और वे बेचारे छटपटाने लगते हैं। उस समय तीर्थंकर प्रभु ने पुनः कहा)

तीर्थंकर भगवान–हे तापसी! तुम व्यर्थ ही गर्व कर रहे हो। देखो! तुम ज्ञान के बिना अपने तन को कष्ट दे रहे हो किन्तु सोचो तो सही, तुम्हारे मन में किंचित दया के बिना धर्म भी नहीं हो सकता है।

तापसी–अरे कुमार! मैं तेरी माता का जनक हूँ तथा इस समय तपस्वी हूँ। फिर भी तूने मद के वश में होकर मेरा विनय नहीं किया और उल्टे तू मेरे तपश्चरण की निन्दा कर रहा है, क्यों? मेरा तप अज्ञान तप क्यों है? मैं पंचाग्नि तप तप रहा हूँ, कभी एक पैर से तो कभी ऊर्ध्व भुजा करके ध्यान करता हूँ, भूख प्यास की बाधा सहन करते हुए सूखे पत्ते से पारणा करता हूँ।

भगवान–तपस्विन्! जिसमें छह काय के जीवों की हिंसा होती है वह तप

कुतप ही है। सम्यग्ज्ञान के बिना कायक्लेश उत्तम फल को नहीं दे सकता है किन्तु जो तप जैनधर्म के अनुसार है वही निश्चितरूप से वांछित फल को देने वाला है।

तापसी—अच्छा! तू मुझे समझाने चला है।

भगवान—देखो! मैंने तुम्हें हितकर वचन कहे हैं तुम इन पर विचार करो और जो उचित प्रतीत होवे उसे ही ग्रहण करो, व्यर्थ ही अपने मन को मलिन मत करो।

(पुनः भगवान उन तड़पते हुए सर्पयुगल को दया से परिपूर्ण होते हुए अनेक प्रकार से उपदेश देते हैं तथा महामंत्र णमोकार मंत्र सुनाते हैं और वे नागयुगल शरीर का परित्याग कर धरणेन्द्र देव और पद्मावती देवी हो गए।)

बंधुओं! आपको यहाँ एक विशेष बात और बतानी है कि पुण्य के समुद्र स्वरूप भगवान् पार्श्वनाथ के लिए भोजन, वस्त्र आदि वस्तुएँ इन्द्र अपने स्वर्ग से लेकर जाकर प्रदान करता है। तीर्थंकर प्रभु गृहस्थावस्था में मृत्युलोक अर्थात् पृथ्वीलोक का अन्न या वस्त्र नहीं ग्रहण करते हैं क्योंकि जब स्वयं इन्द्र ही प्रभु का किंकर है तो फिर उन्हें अन्य के द्वारा किसी वस्तु के ग्रहण करने की आवश्यकता का प्रसंग ही क्यों आएगा। इस प्रकार देखते-देखते भगवान पार्श्वनाथ के जीवन के उन्तीस वर्ष व्यतीत हो गए।

—सप्तम दृश्य—

(प्रभु पार्श्वनाथ तीस वर्ष की अवस्था में प्रवेश करते हुए किसी समय राज्यसभा में सुखपूर्वक बैठे हुए हैं उसी समय राजदरबार में अयोध्या नरेश जयसेन महाराज का दूत आता है और नाना प्रकार की वस्तुएँ भेंट में रखकर नमस्कार करता है)

—राजदरबार का दृश्य—

(सभा में महाराज अश्वसेन के साथ प्रभु पार्श्वनाथ भी बैठे हैं तभी अयोध्या नरेश जयसेन का दूत प्रवेश करता है)

दूत—महाराज अश्वसेन की जय हो। युवराज पार्श्वनाथ की जय हो।

महाराज—कहो दूत! अपने आगमन का कारण कहो।

दूत—महाराज! मैं अयोध्या नरेश महाराजा जयसेन का दूत हूँ। उन्होंने आपके लिए अपनी यह छोटी सी भेंट आपकी सेवा में प्रस्तुत की है।

भगवान पार्श्वनाथ—क्या कहा दूत! अयोध्या नगरी के राजा जयसेन ने। यह वही तो अयोध्या नगरी है, जहाँ सदैव तीर्थंकर भगवन्तों का जन्म होता रहा है।

दूत—हाँ युवराज! यह वही अयोध्या नगरी है, जहाँ युग की आदि में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने जन्म लिया और प्रजा को जीवन जीने की कला सिखाई, पुनः नीलांजना के नृत्य से उन्हें वैराग्य हो गया और उन्होंने जिनदीक्षा धारण कर ली। उसी अयोध्या नगरी में भगवान अजितनाथ, अभिनंदननाथ व सुमतिनाथ भगवान भी जन्मे हैं जिन्होंने वैराग्य होते ही दीक्षा ग्रहण कर ली और मुक्तिरमा का वरण कर लिया।

(इधर दूत भगवान ऋषभदेव के अवतार का वर्णन करते हुए सविस्तार अयोध्या की संपत्ति का वर्णन कर रहा था उधर प्रभु पार्श्वनाथ सहसा विरक्तमना होकर चिन्तवन करने लगे)

प्रभु पार्श्वनाथ—अहो! इन तीर्थंकरों ने उत्तम-उत्तम भोगों का परित्याग करके आत्मसिद्धि प्राप्त की है अब मेरा भी आत्मसाधना का समय हो चुका है। जब इन्द्रों के वैभव से इस जीव की तृप्ति नहीं हो सकती है तो किंचित् मात्र मनुष्य भव के सुखों से क्या तृप्ति हो सकती है।

(जिस समय प्रभु बारह भावनाओं का चिन्तवन कर रहे थे कि तत्क्षण ही लौकांतिक देव आकर पुष्पांजलि चढ़ाकर प्रभु के चरणों की पूजा करके प्रभु के गुणों का कीर्तन करने लगते हैं)

(लौकांतिक देवों का जय-जयकार करते हुए दरबार में प्रवेश)

(प्रभु के समीप पहुँचकर उन्हें प्रणाम करते हैं)

लौकांतिक देव-1—हे देवाधिदेव! आप धन्य हैं। आपकी निर्मल विचारसरणि धन्य है।

लौकांतिक देव-2—हे दयानिधे! यह समय भी धन्य है जो कि आपने मोहसेना को जीतने के लिए तैयारी की है।

लौकांतिक देव-3—नाथ! आज शिवकांता अपने सौभाग्य की सराहना कर रही है और उसकी प्रतीक्षा में वह आज तपस्या सखी को भेजकर आपको अपनी ओर शीघ्र ही आकर्षित करना चाहती है।

लौकांतिक देव-4—स्वामी! जगत् के जीवों का आज महान पुण्य अवसर आया है जो कि आपने उनके उद्धार के लिए कदम उठाया है।

(इत्यादि रूप से स्तुति करते हुए वे लौकांतिक देव अपने-अपने स्थान पर चले गए)

निर्देशक—(उसी समय आसन कंपित होते ही सौधर्म इन्द्र ने स्वयं प्रभु की सेवा में असंख्य इन्द्रों के साथ उपस्थित होकर वाराणसी नगरी को स्वर्ग से भी अधिक रमणीक बना दिया और प्रभु का अभिषेक कर उन्हें दिव्य वस्त्रालंकार पहनाकर विमला नाम की पालकी में बिठाया। जिसे सर्वप्रथम भूमिगोचरी राजाओं ने पुनः विद्याधर राजाओं ने, अनन्तर इन्द्रों ने अपने कंधे पर धारण किया और निमिष मात्र में आकाशमार्ग से चलते हुए अश्व नामक वन में पहुँचे, जहाँ इन्द्र ने शचि इन्द्राणी द्वारा पूरित रत्नों के चूर्ण से बने स्वस्तिक पर बैठने का निवेदन किया और प्रभु ने सिद्धों की साक्षीपूर्वक पंचमुष्टि केंशलोंच कर दिगम्बर मुद्रा धारण कर ली और दीक्षा लेते ही उन्हें मनःपर्यय ज्ञान प्रगट हो गया। वह दिवस पौष वदी एकादशी का था।उनके साथ-साथ अन्य तीन सौ राजाओं ने भी दीक्षा धारण कर ली। प्रभु ने दीक्षा लेते ही तेला का नियम ले लिया। प्रभु को प्रथम ही आहार देने का सौभाग्य गुल्मखेटपुर के महाराजा ब्रह्मदत्त को मिला था)

—अष्टम् दृश्य—

(एक समय प्रभु योग में तन्मय हुए अपनी शुद्धात्मा के परमानन्द अमृत रस का अनुभव ले रहे थे तभी आकाशमार्ग से गमन करते हुए संवर नामक ज्योतिषी देव का विमान वहीं रुक गया)

(भगवान पार्श्वनाथ ध्यानारूढ़ हैं तभी संवरदेव का विमान वहाँ रुक गया)

संवर देव—अरे! यह क्या हुआ? मेरा विमान क्यों रुक गया। (नीचे देखता है) जरूर कोई महापुरुष नीचे विराजमान हैं, तभी यह मेरा विमान आगे नहीं बढ़ रहा है। (पुनः अपने अवधिज्ञान से जानकर) अच्छा! तो यह बात है। यह तो मेरे दस जन्मों का शत्रु है, इसने मुझे कमठ की पर्याय में किस प्रकार अपमानित किया था। कैसा चुपचाप बैठा है, अभी बताता हूँ, ध्यान में लीन हैं योगीराज, अभी इनका ध्यान भंग करता हूँ।

(क्रोधित होकर) अरे दुष्ट! आज मैं अपने हर जन्म का बदला लेकर रहूँगा।

(इतना कहकर उसने प्रभु के ऊपर घोर उपसर्ग करना प्रारंभ कर दिया। जोर-जोर से अट्टहास करता हुआ वह भयंकर आंधी चलाने लगा,

पत्थरों की वर्षा होने लगी, मूसलाधार बारिश होने लगी। उस समय जल और थल एक होकर महासागर सा दिखने लगा। विक्रिया बल से वह पापी कमठचर किलकिल शब्द करता हुआ महाबेताल का रूप लेकर अग्नि उगलने लगा। अधिक क्या कहना, उसने अनेक प्रकार के भेष धारण कर प्रभु पर भयंकर उपसर्ग किया परन्तु महामना प्रभु सुमेरु के समान अचल थे, परम सहिष्णु थे। उस उपसर्ग के प्रसंग में सहसा धरणेन्द्र देव का आसन कंपायमान हो उठा।)

संवर देव—आ हा हा हा! देख पापी, दुष्ट, आंखे खोल, वर्ना मैं तुझे डुबो दूँगा, आग उगल-उगल कर तुझे जला डालूँगा।

(भगवान पार्श्वनाथ को अविचल ध्यानारूढ़ देख और क्रोधित हो उठता है)

अच्छा तो तू ऐसे नहीं मानेगा। देख, ले सह मेरा वार। आ हा हा हा.....।।

(उधर धरणेन्द्र देव का आसन कंपायमान हो उठा)

धरणेन्द्र देव—(आसन कंपित होता देख) अरे! यह क्या हुआ? मेरा आसन क्यों कंपित हो उठा (पुनः अवधिज्ञान से विचार कर) ओह! यह क्या? मेरे प्रभु पर उपसर्ग, मेरे संकटहर्ता पर इतना बड़ा उपसर्ग। (पुनः देवी पद्मावती से कहते हैं)

देवी पद्मावती! हम पर अनन्य उपकार कर तिर्यंच योनि से निकालकर देवयोनि की प्राप्ति कराने वाले संकटहर्ता भगवान पार्श्वनाथ पर एक देव द्वारा घोर उपसर्ग हो रहा है।

देवी पद्मावती—क्या कहा नाथ! प्रभु पार्श्वनाथ पर उपसर्ग, हमें णमोकार महामंत्र को सुनाकर उत्तम गति की प्राप्ति कराने वाले उन क्षमाशील प्रभु पर उपसर्ग। चलिए नाथ! जल्दी चलिए। हमारे उपकारी प्रभु का उपसर्ग दूर करिए।

धरणेन्द्र देव—हाँ देवी! शीघ्रता करिए।

(दोनों देव दंपत्ति वहाँ पहुँचते हैं और प्रभु की तीन प्रदक्षिणा लगाकर उन्हें बारम्बार नमस्कार करते हैं पुनः उस पापी देव से कहते हैं)

धरणेन्द्र देव—अरे! पापी संवर! ठहर जा। क्यों तुझे पता नहीं कि तू यह किस पर उपसर्ग कर रहा है, प्रभु पार्श्वनाथ पर! अरे दुष्ट! क्या तुझे यम का भी भय नहीं।

संवर देव—अच्छा तो तू इनकी रक्षा करने आया है, जब यह स्वयं अपनी रक्षा न कर सका तो तुझे बुलाया है।

देवी पद्मावती—अरे नराधम! जब प्रभु कई भवों से तेरे उपसर्ग को सहन कर रहे हैं तो अब तो वे साक्षात् तीर्थंकर भगवान हैं, कर्मशत्रु के विजेता हैं, महाशूरवीर हैं, तू भला उनका क्या बिगाड़ सकता है? अभी भी समय है प्रभु से क्षमा मांग ले।

संवर देव—क्षमा और इससे। एक शत्रु से क्षमा। हा-हा-हा-हा, ले बचा अपने प्रभु को।

(यह कहकर पुनः उपसर्ग प्रारंभ कर देता है) तब प्रभु पार्श्वनाथ के ऊपर धरणेन्द्र और पद्मावती फण का छत्र तान देते हैं और धरणेन्द्र युगल को देखते ही वह पापी कमठचर भाग खड़ा होता है)

(पार्श्वनाथ भगवान पर इन उपसर्गों का कोई असर नहीं है, शान्तचित्त प्रभु ने सप्तम गुणस्थान से ऊपर चढ़कर क्षपक श्रेणी में आरोहण करते हुए दशवें, पुनः बारहवें गुणस्थान में पहुँचकर केवलज्ञानरूप परम ज्योति को प्राप्त कर लिया। तत्क्षण ही प्रभु पृथ्वी से 5000 धनुष ऊपर आकाश में पहुँच गए। इन्द्रों के आसन कंपित होते ही सौधर्म इन्द्रादि सभी देवगण वहाँ आ गए और इन्द्र की आज्ञा से धनकुबेर ने समवसरण की रचना कर दी।

बंधुओं! प्रभु पर आए उपसर्ग को दूर करने के लिए धरणेन्द्र देव ने अहिसर्प का रूप धारण कर प्रभु के ऊपर छत्र धारण किया था इसीलिए उस स्थान का 'अहिच्छत्र' यह सार्थक नाम विश्व में विख्यात हो गया।

भगवान पार्श्वनाथ का समवसरण लगा है। उनके समवसरण में प्रथम गणधर स्वयंभू स्वामी तथा अन्य नौ गणधर थे, सोलह हजार मुनि, छत्तीस हजार आर्यिकाएं, 1 लाख श्रावक, 3 लाख श्राविकाएं तथा असंख्यात देव-देवियाँ व संख्यात तिर्यंच थे। सभी बारह सभा में अपने-अपने योग्य कोठे में बैठे भगवान का उपदेश सुन रहे हैं।

भगवान पार्श्वनाथ की दिव्य वाणी खिरती है-ॐ.....

भव्यात्मन्! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता ही मोक्ष का मार्ग है, इस रत्नत्रय को धारण करने वाला जीव संसार से तिर जाता है। जो चतुर पुरुष रसायन के समान सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र इन तीनों का सेवन करता है वह अचिन्त्य और अविनाशी मोक्षरूपी

पद को प्राप्त कर लेता है।

(इधर संवर नाम का वह ज्योतिषी देव भी काललब्धि पाकर शांत हो गया और उसने प्रभु को नमस्कार कर उपदेश श्रवण कर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया। यह देख उस वन में रहने वाले सात सौ तपस्वियों ने भी मिथ्यादर्शन छोड़कर संयम धारण कर लिया। बारह सभाओं के मध्य धर्मोपदेश करते हुए प्रभु ने पाँच माह कम सौ वर्ष तक विहार किया, अंत में जब प्रभु की आयु एक माह शेष रह गई तब वे विहार बंद कर सम्मेदाचल के शिखर पर 36 मुनियों के साथ प्रतिमायोग धारण कर विराजमान हो गए। श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन प्रातःकाल के समय प्रभु ने शेष अघातिया कर्मों को भी निर्मूल करके यमराज के मान का मर्दन कर निर्वाणपद प्राप्त कर लिया। उसी समय इन्द्रों ने आकर प्रभु के निर्वाणकल्याणक महोत्सव को धूमधाम से मनाया)

(यहाँ सम्मेदशिखर का दृश्य दिखाकर प्रभु का निर्वाणकल्याणक का दृश्य दिखावें। पुनः एक सामूहिक नृत्य के साथ नाटक का समापन करें।)

भजन

तर्ज –फूलों सा चेहरा तेरा.....

शाश्वत है तीरथ मेरा, सम्मेदगिरि नाम है।
गिरिवरों में श्रेष्ठ है, आदि सिद्धक्षेत्र है, मधुवन परम धाम है।।टेक.।।

कहते हैं इस गिरि की वन्दना से,
तिर्यंच नरकायु मिलती नहीं है।
श्रद्धा सहित इसकी अर्चना से,
भव्यत्व कलिका खिलती रही है।।

रात अंधेरी हो, भक्ति सहेली हो, लगता न डर पर्वत पर कभी।
अतिशय से गूँजे यहाँ, सांवरिया का नाम है।
गिरिवरों में श्रेष्ठ है, आदि सिद्धक्षेत्र है, मधुवन परम धाम है।।1।।

इस युग के चौबीस तीर्थंकरों में,
मोक्ष गए बीस जिनवर यहाँ से।

कितने करोड़ों मुनियों ने भी,
तप करके शिवालय पाया यहाँ से।।
तीर्थ पुराना है, श्रेष्ठ खजाना है, सबको तिराता है संसार से।
तीरथ की कीरत अमर, कर सकता इंसान है।
गिरिवरों में श्रेष्ठ है, आदि सिद्धक्षेत्र है, मधुवन परम धाम है।।2।।

जिनधर्म निधि को पाकर के उसका,
सच्चा सदुपयोग करना है हमको।
आपस में मैत्री, दीनों पे करुणा,
का भाव जग में सिखाना है सबको।।
स्वार्थ त्याग करके, शीघ्र जाग करके, जैनत्व की सब रक्षा करो।
तीरथ की रज ''चन्दना'', मस्तक का परिधान है।
गिरिवरों में श्रेष्ठ है, आदि सिद्धक्षेत्र है, मधुवन परम धाम है।।3।।

भजन

तर्ज-जहाँ डाल-डाल.....

श्री पार्श्वनाथ प्रभु का तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव आया,
जन-जन में खुशियाँ लाया।।टेक.।।
है धन्य धरा इस भारत की, जहाँ उत्सव होते रहते।
तब महापुरुष के जीवन से, सब परिचित होते रहते।
सब परिचित.....
गणिनी माता श्री ज्ञानमती ने इसका बिगुल बजाया,
जन-जन में खुशियाँ लाया।।1।।
श्री ऋषभदेव से महावीर तक, चौबिस तीर्थंकर हैं।
इनमें से पारसनाथ नाम के, तेईसवें जिनवर हैं।
तेइसवें जिनवर.....
पितु अश्वसेन वामा माता से, जन्म जिन्होंने पाया,
जन-जन में खुशियाँ लाया।।2।।
अट्ठाइस सौ इक्यासीवाँ यह जन्मकल्याणक उत्सव।
प्रारंभ हुआ है जन्मभूमि वाराणसि से ये महोत्सव।।
वाराणसि से.....
''चन्दनामती'' स्वर्णिम प्रकाश को लिए वर्ष यह आया,
जन-जन में खुशियाँ लाया।।3।।

क्षमा के अवतार-भगवान पार्श्वनाथ

रचयित्री-ब्र. कु. इन्दु जैन (संघस्थ)

सुनो बंधुओं आज तुम्हें मैं इक इतिहास सुनाती हूँ।
क्षमा क्रोध के द्वन्द की मैं रोमांचक कथा बताती हूँ।।
है नगरि अयोध्या अवधपुरी में शाश्वत जन्मभूमि मानी।
इतिहास पुराणों में इसकी गौरव गाथा वर्णित जानी।।1।।

पर वर्तमान में काल अभी हुण्डावसर्पिणी आया है।
अघटित घटनाएँ हों इसमें, आचार्यों ने बतलाया है।।
है काल प्रभाव जो वर्तमान में केवल पाँच प्रभू जन्में।
उन्नीस शेष तीर्थंकर जिन हैं, अलग-अलग भू पर जन्में।।2।।

उनमें तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ जिनवर जाने।
वह जन्में नगरि बनारस में, उस भू को परम पूज्य मानें।।
पितु अश्वसेन वामा माता उस नगर के राजा-रानी थे।
रत्नों से खचित महल उनका, जिनभक्त परम चहुँ नामी थे।।3।।

यह वही बनारस नगरी थी, जहाँ पहले प्रभू सुपार्श्व हुए।
उस निकट चन्द्रपुरि नगरी में, श्री चन्द्रप्रभू जिनराज हुए।।
हैं सिंहपुरी अब सारनाथ, श्रेयांसनाथ प्रभु जन्में थे।
उस वाराणसि के कण-कण में, इतिहास अनेकों पनपे थे।।3।।

अब सुनो! इक दिवस वामा माँ, गहरी निद्रा में सोई थीं।
सोलह सपने सुन्दर दीखे, आश्चर्यचकित उठ बैठी थीं।।
उन ब्रह्ममुहूर्त के सपनों का फल निज स्वामी से जब पूछा।
पतिदेव कहें हे देवि सुनो! तव गर्भ में तीर्थंकर प्रकटा।।4।।

ऐसा सुन रोमांचित माता, पति को प्रणाम कर हर्षमुद्रा।
वाराणसि में छाईं खुशियाँ, महलों में आनंद उत्सव था।।
सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से, आ धनद रत्न बरसाता था।
15 महिनों तक वृष्टि हुई, धरती अम्बर हरषाता था।।5।।

शुभ पौष वदी एकादशि की शुभ घड़ी धन्य धन हो आई।
जब प्रभुवर ने था जन्म लिया, स्वर्गों में भी खुशियाँ छाईं।।
सब इन्द्र सपरिकर उमड़ पड़े, प्रभु का जन्मोत्सव खूब किया।
मेरू की पांडुशिला पर जा, तीर्थंकर शिशु का न्हवन किया।।6।।

स्वर्गों से लाए दिव्य वस्त्र से, शचि ने किया अलंकृत जब।
प्रभुवर की शोभा न्यारी थी, लिखने में नहिं लेखनि सक्षम।।
जन्मोत्सव कर प्रभु को सौंपा, सुर आज्ञा ले निज द्वार चले।
प्रभु झूल रहे हैं रत्न पालना, उनकी उपमा कौन धरे।।7।।

अब शैशव से बचपन आया, फिर तरूणाई ने घेर लिया।
पितु-मात ने सोचा हुआ युवा, परिणय का तुरत विचार किया।।
पर तभी एक अनहोनी सी, घटना उनके समक्ष आई।
इक दूत अयोध्या नगरी से, लाया कई भेंट सुनो भाई।।8।।

युवराज पार्श्व ने पूछा सुन रे दूत! कहाँ से आया है।
ऐसी अनुपम और दिव्य वस्तु, किस हेतु, कहाँ से लाया है।।
सुन दूत अयोध्या नगरी का, ज्यों-ज्यों वर्णन करता जाता।
युवराज पार्श्व का मन विरक्त, त्यों-त्यों प्रतिपल होता जाता।।9।।

निज अवधिज्ञान से जान लिया, ऋषभेश्वर का स्मरण किया।
वैराग्य प्रकट ज्यों हुआ तभी, लौकान्तिक सुर आ नमन किया।।
चल पड़े प्रभू पालकि पर चढ़, सुन मात-पिता घबराए थे।
पर नहीं रोक पाए किंचित्, प्रभु ने ज्यों कदम बढ़ाए थे।।10।।

कर सिद्ध प्रभू को नमन लिया, दीक्षा प्रभुवर मुनि श्रेष्ठ बने।
मनपर्यय ज्ञान प्रकट होने से, ऋद्धि सिद्धि से पूर्ण हुए।।
इक समय सघन वन में जाकर, प्रभुवर थे ध्यानारूढ़ हुए।
पापी कमठासुर आ पहुँचा, नीचे देखा तो पार्श्व खड़े।।11।।

रुकते विमान को देख उसे, दश भव का वैर याद आया।
बस उसी समय उस पापी के, मन में कुत्सित विचार आया।।
देखो! यह दश भव का वैरी, मरुभूती मेरा भाई था।
राजा से दण्डित करवाया, अरु घोर किया अपमानित था।।12।।

इसकी रानी को चाहा था बस यही जरा सी गलती थी।
इस दुष्ट ने जो-जो पीड़ा दी, उसका बदला लेता हूँ अभी।।
संवर नामक उस ज्योतिष ने, उपसर्ग तुरंत प्रारंभ किया।
पत्थर फेंके, मूसल धारा, आंधी से जग आक्रान्त किया।।13।।

कैसा उपसर्ग भयानक था, पत्थर को पिघलाने वाला।
पर क्षमासहिष्णू पारस को, नहिं डिगा सका वह मतवाला।।
चढ़ क्षपक श्रेणि पर प्रभुवर ने, घाती कर्मों का नाश किया।
अरु उस पापी ने कर्मबंध कर, दुर्गति का था द्वार लिया।।14।।

देखा धरणेन्द्र व पद्मावति, आकर के फण का छत्र किया।
देवी ने बनाया सिंहासन, प्रभुवर को उस पर बिठा लिया।।
ध्यानस्थ प्रभू को राग नहीं, नहिं द्वेष किसी पर आया था।
केवलि जिनवर का समवसरण, इन्द्रों ने आन रचाया था।।15।।

यह वही नाग और नागिन थे जिनकी रोमांचक घटना है।
प्रभुवर के शैशव की उस घटना से भी परिचित होना है।।
इक बार पार्श्वप्रभु सखा संग क्रीड़ा हेतू वन ओर चले।
उस वन में नाना महीपाल पंचाग्नी तप तप रहे अरे।।16।।

नाना को लख जब नहीं झुके, तब क्रोध भयानक आया था।
सोचा दो दिन के छोरे ने, अपमान मेरा कर डाला था।।
क्रोधित महिपाल उठा फरसा, जलता लक्कड़ चीरने लगा।
प्रभु पार्श्व कहें हे तात सुनो! इसमें हैं नागयुगल रहता।।17।।

भीषण क्रोधाग्नी में जलकर, ज्यों ही लकड़ी को था चीरा।
निकले थे नागयुगल उसमें, हो रही असह्य उनको पीड़ा।।
उस जली हुई लकड़ी में दोनों, बेचारे अधजले हुए।
उनकी पीड़ा को देख प्रभो!, लगे थे णमोकार मंत्र कहने।।18।।

सम्बोधन प्रभु का पाकर के, शुभ गती उन्हें बंध गई अरे।
धरणेन्द्र और पद्मावती बन, उपकारी को वह नमन करें।।
उन नागयुगल ने ही आकर, उपकार का बदला चुका दिया।
नाना महिपाल कषाय-भाववश मरा और ज्योतिष्क हुआ।।19।।

यह वही कमठ का जीव जो नाना, महीपाल के रूप में था।
मिथ्यात्व भाव से मरने से, वह ही मिथ्यात्वी देव हुआ।।
जब मरूभूति थे पार्श्व प्रभू, यह कमठ रूप में भाई था।
था दुराचार में लिप्त और अन्यायी, अत्याचारी था।।20।।

भाई के मोह में मरूभूति जब लेने इसके पास गया।
क्रोधित हो पटकी शिला तभी, वह मरकर हाथी बन जन्मा।।
हाथी को सांप बन मारा था, मुनि को अजगर बन निगल गया।
ऐसे करते-करते उसने, दस भव तक उनको कष्ट दिया।।21।।

पर क्षमा के सागर मरुभूति ने, सदा उन्हें था क्षमा किया।
इस क्षमा के बल पर ही उनने, तीर्थंकर प्रकृति बंध किया।।
जब स्वर्ग के सुख भोगे इनने, वह पापी नरकों में घूमा।
फिर भी नहिं क्रोध कभी छोड़ा, हरदम पापों में रहा रमा।।22।।

अब जब प्रभु पार्श्व बने वह उनका, नाना बनकर जन्मा था।
पर मिथ्यात्वी था, तापसि था, अतएव वह संवर देव बना।।
अब शायद काललब्धि आई, जो सुमति उसे आ उपजी थी।
उपसर्ग भयानक करने पर भी, प्रभु की क्षमा ही लक्ष्मी थी।।23।।

प्रभु समवसरण में चतुरंगुल थे, अधर दिव्यध्वनी वहाँ खिरी।
बारहों सभा में बैठ सभी, जीवों ने निज भाषा में सुनी।।
वह संवर भी आकर प्रभु के, चरणों में कैसे पड़ा हुआ।
प्रभु क्षमा करो, प्रभु क्षमा करो, बस एक यही विनती करता।।24।।

भव-भव से जिनने क्षमा किया, वह आज भला क्यों नहिं करते।
जब पश्चाताप की अग्नि जली, संवर शुभ गति का बंध करे।।
जिस स्थल पर उपसर्ग हुआ, धरणेन्द्र व पद्मावति आये।
फण का जो छत्र बनाया था, वह तीर्थ 'अहिच्छत्र' कहलाए।।25।।

हैं आज भी देवी पद्मावति, धरणेन्द्र सदा राजित वहाँ पर।
जो भक्त सदा मन से ध्याते, आते हैं प्रभु के द्वारे पर।।
प्रभु रक्षक देव सदा भक्तों की, मनवाञ्छा पूरी करते।
देवी पद्मावति की भक्ती, कितनों की ही पीड़ा हर ले।।26।।

उन केवलज्ञानी प्रभु जी ने फिर मुक्ति कहाँ से पाई है।
यह भी इतिहास का पन्ना है, उसकी भी कथा सुनाई है।।
उन केवलज्ञानी जिनवर का, शुभ समवसरण चहुँ ओर रचा।
कितने ही भव्य सुनें वाणी, कितनों का मार्ग प्रशस्त हुआ।।27।।

शाश्वत तीरथ सम्मेदशिखर, निर्वाणथली मानी जाती।
हुए सिद्ध अनन्तानन्त जहाँ, सुर नर वंदित वह कहलाती। ।
पर कालदोषवश बीस तीर्थंकर, उस स्थल से मोक्ष गए।
अरु चार तीर्थंकर अलग-अलग, स्थानों से हैं मुक्त हुए।।28।।

प्रभु पार्श्वनाथ ने भी उस स्थल, से शिवरमणी वरण किया।
लोकाग्र शिखर पर राजे जा, है शाश्वत सुख सर्वदा जहाँ।।
सम्मेदशिखर में स्वर्णभद्र है, कूट जहाँ से प्रभुवर ने।
मुक्तिश्री का साम्राज्य लिया, श्रावण सुदि सप्तमि शुभ तिथि में।।29।।

वह तीरथ 'पार्श्वनाथ हिल' नाम से, सारे जग में ख्यात हुआ।
है विश्ववंद्य वह तीर्थराज, जिसका कण-कण है पूज्य महा।।
उन ही प्रभुवर श्री पार्श्वनाथ का, तृतिय सहस्राब्दी उत्सव।
भारत के कोन-कोने में, इस वर्ष के अन्तर्गत उत्सव।।30।।

श्री गणिनीप्रमुख ज्ञानमती, माताजी की सम्प्रेरणा मिली।
जिनधर्म की शाश्वत सत्ता की, कीर्ती भूमण्डल पर फैली।।
उन पार्श्वप्रभू को 'इन्दु' नमें, अरु नमे ज्ञानमती माताश्री।
भारत माता की गोदी इस, माता से कभी न हो सूनी।।31।।

G G G G G